

श्री जैन धन्धुओं के लिये अपूर्व लाभ चार अपूर्व रत्न ।

— १९२७७, १९२१५ —

प्रिय जैन धन्धुओ !

यदि आप मानव जीवन के सच्चे सच को जानना चाहते हैं, मानव जीवों के रहस्य को समझना चाहते हैं, जैन सिद्धान्त के गूढ़ तत्त्वों को जानना चाहते हैं, धर्म, अधर्म, कर्मभेद, उनका फल, नवतरंग, भक्ति, शान्ति मुक्ता, वैराग्य और दया आदि परम आवश्यक विषयों के सार्थक स्वरूप को जानने की चापरी रचि है तो मनी शिरोमणि श्री १००८ श्री आर्या भूरभुन्दरी जी महाराज के बनाये हुए चार बड़े प्र-यों को नीचे लिखे पते से देवता साक अथ क लिपि १॥१० भेजकर पढ़िये ।

मिठ्ठनलाल कोठारी पल्लीवाल जैन,
खदेशी भण्डार, भरतपुर

श्री *

श्री पञ्चपरमेष्ठिने नम

८६४
५५

भूरसुन्दरी ज्ञान प्रकाश

जिसको—

श्री जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायस्य श्री भाईस टोला के
श्री १००८ श्री नाथूरामजी महाराज के सम्प्रदाय की
आर्यानी श्री १००८ श्रीचम्पाजी महाराज की शिष्या
सनी शिरोमणि श्री १००८ आर्या
भूरसुन्दरी जी महाराज ने
निर्मित किया

जिसका

जयदयाल शर्मा शाली (भूतपूर्व संस्कृत
प्रधानाध्यापक श्री दूगर फाल्गुन धीकानेर) ने
सशोधन किया

प्रथम बार }
१००० प्रति }

वीर स० २४२३
विक्रम स० १९८६

} न्यौद्धावर
} सद्दुपयोग

• प्रकाशक—
मिट्ठनलाल कोठारी पर्ल्सावाल जैन,
स्वदेशी भण्डार
भरतपुर (राजपूताना)



मुद्रक—
सत्यमत शर्मा
शान्ति प्रेस, शीतलागली
आगरा ।

* श्री *

समर्पण

श्रीमती सर्वोत्तम गुणसम्पन्ना, महासुशीला, सदा चारिणी, सतीवया, श्री चौपावतजी साहिबा (धर्मपत्नी धर्ममूर्ति श्री कण्ठसिंहजी साहय श्रीगद्दी सर्दार राज्य अलवर) योग्य ।

महोदये ।

यह छोटी सी पुस्तक आपके ही वत्साह और अनुरोध से बनाई गई है, आपका शिष्टा प्रेम और विद्यानुराग प्रशंसा के योग्य है, हार्दिक धर्मभाव और सदाचार के द्वारा आप नारीरत्न हैं, आपके इन्हीं गुणों को हृदयङ्कत कर यह पुस्तक आपके कर कमलों में समर्पित की जाती है, आशा है कि इस विरस्थायिनी एवं परमोपयोगिनी ज्यु भेंट को स्वीकार कर इसके प्रकाशन के द्वारा सर्व साधारण का तथा विशेषतया स्त्री जाति का उपकार कर पुण्यभाषिणी बनेंगी ।

भवदीया—श्यामा भूरसुन्दरी

विषय-सूची

| विषय | पृष्ठ |
|--------------------------|-------|
| प्रथम परिच्छेद | |
| १—पञ्च परिमेषि नमस्कार | १ |
| द्वितीय परिच्छेद | |
| २—उपदेश के दोहे | २६ |
| ३—सोध दायिनी शिष्यायें | ४० |
| ४—पहेलिया | ५१ |
| तृतीय परिच्छेद | |
| ५—स्त्री शिष्या का उपदेश | ६३ |

* श्री *

प्रस्तावना

प्रिय पाठकवर्ग !

मेरे बनाये हुए भूरसुन्दरी विवेक विलास, भूरसुन्दरी बोध विनोद एवं भूरसुन्दरी श्रव्यात्म बोध नामक तीन ग्रन्थों को आप पढ़ चुके हैं। मुझे आशा नहीं थी कि आप मेरे इन ग्रन्थों का इतना बहुमान करेंगे, प्रत्युत मुझे तो यह खयाल था कि यह सब मेरी कृति बुद्धिमानों के आगे बाल लीलायत् समझी जावेगी, परन्तु सत्य है कि बुद्धिमान् सत्पुरुष नीर क्षीर विवेकी हंस के समान होते हैं, जो कि दोषों का परित्याग कर सार ग्रहण करते हैं, सज्जनों का जब यह स्वाभाविक गुण है तो उन्हें मेरी कृति का बहुमान करने के लिए धन्यवाद देने की भी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। हाँ, इतना कह देना श्रत्यावश्यक है कि यदि पूर्वानुसार सत्पुरुष भविष्यत् में भी

मुझ अपना विद्या और बुद्धि स हीन बालिका जान मेरा वृत्ति का अपनात रहेंगे तो मैं उनका चिरवाधित रहूंगा ।

इस प्रकार निज वृत्ति का बहुमान दख उरसाह में भर कर कतिपय सज्जना क अनुराध स भूरसुन्दरी विद्या बिलास नामक चौथा ग्रन्थ और भा तैयार किया जा रहा है जो कि शाध हा तैयारहाकर प्रस में जान वाला है, आशा है कि सत्पुरुष पूर्णानुसार उसे भी अपना कर मुझ वृत्ताथ करेंगे ।

उक्त ग्रन्थ क सेवा म पहुँचन से पून यह एक छोटा सा पुस्तक वाच में हा निर्माण कर पाठक वर्ग का सेवा में पहुँचाइ जाता है इस पुस्तक का समपण अनवर राज्यान्तर्गत श्रीगढ़ा क सर्दार धममूर्ति श्री ठाकुर कणसिंह जी महोदय का धर्म पत्ता क कर कमनों में किया जाकर उन्हीं महोदय क द्वारा आर्थिक सहायता को प्राप्त कर प्रकाशन किया गया है, उक्त महोदय परम सुशाला सदाचारिणा तथा सताजयां होन से नारा रत्न हैं आपक ही अनुराध से यह पुस्तक लिखी भी

गई हे, ऐसी दशा में इसका उक्त महोदया के कर कमलों में समर्पण भी नितान्त आवश्यक ही हे ।

इस पुस्तक में छोटे छोटे तीन परिच्छेद हैं जिनमें से प्रथम परिच्छेद में—चानुर्वर्ण्य रूप जैन सद्य के परम माननीय पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के आराधन के साधनभूत श्री नवकार मन्त्र क गुणन का महत्त्व प्रदर्शित कर उसके पाच पदों की श्रानुपूर्वी श्रनानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी लिखी गई है, तथा उसक नाचे जैन सिद्धान्त सम्बन्धना पर मोपयोगिनी शिक्षायें भी लिखी गई हैं, दूसरे परिच्छेद में सर्व साधारण क लिए अतिलामदायक ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म और दया श्रादि विषयक उपदेशप्रद २०५ दोहे लिखे गये हैं, उनके पश्चात् कतिपय शिक्षा के वाक्य लिख जाकर अन्त में कुछ पहेलियाँ भी लिखा गई है जिन के पठन से बुद्धि के वृद्धि की सम्भावना है, तथा तीसरे परिच्छेद में श्री शिक्षा क विषय में एक लेख दिया गया है । पुस्तक कैसी है, इस विषय का निर्धार पाठकवर्ग की अनुमित पर ही निर्भर किया जाता है, हाँ इतना कह दना परम आवश्यक है कि इस के लेखों में जो

मुझे अपना विद्या और बुद्धि स हान बालिका जान मेरा वृत्ति को अपनाते रहेंगे तो मैं उनकी चिरवाधित रहूँगी ।

इस प्रकार निज वृत्ति का बहुमान दख उत्साह में भर कर कतिपय सज्जनों क अनुरोध से भूरसुन्दरी विद्या विलास नामक चांथा ग्रन्थ और भी तैयार किया जा रहा है जो कि शास्त्र ही तैयार होकर प्रस में जाने वाला है, आशा है कि सत्पुरुष पूर्णानुसार उसे भी अपना कर मुझे वृत्ताथ करेंगे ।

उक्त ग्रन्थ क सेना म पहुँचन स पून यह एक छोटा सी पुस्तक बीच में हा निर्माण कर पाठक वर्ग की सेवा में पहुँचाइ जाता है, इस पुस्तक का समर्पण अलवर राज्यान्तगत श्रीगढा क सर्दार धर्ममूर्ति श्री ठाकुर कर्णसिंह जी महोदय का धर्म पत्रा क कर कमलों में किया जाकर उन्हीं महादया क द्वारा आर्थिक सहायता को प्राप्त कर प्रकाशन किया गया है, उक्त महादया परम सुशाला सदाचारिणा तथा सतावर्या होने से नारी रत्न है आपक ही अनुरोध से यह पुस्तक लिखी भी

गई है, ऐसी दशा में इसका उक्त महोदया के कर कमलों में समर्पण भी नितान्त आवश्यक ही है।

इस पुस्तक में छोटे छोटे तीन परिच्छेद हैं जिनमें से प्रथम परिच्छेद में-चातुर्वर्ग्य रूप जैन संघ के परम माननीय पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के श्रावण के साधनभूत श्री नमस्कार मन्त्र के गुणन का महत्त्व प्रदर्शित कर उसके पाच पदों की श्रानुपूर्वी श्रानानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी लिखी गई है, तथा उसके नीचे जैन सिद्धान्त सम्बन्धिनी परमोपयोगिनी शिक्षायें भी लिखी गई हैं, दूसरे परिच्छेद में सर्व साधरण के लिए अतिलाभदायक-ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म और दया आदि विषयक उपदेशप्रद १०५ दोहे लिखे गये हैं, उनके पश्चात् कतिपय शिक्षा के वाक्य लिखे जाकर अन्त में कुछ पहेलियाँ भी लिखी गई हैं जिन के पठन से बुद्धि के वृद्धि की सम्भावना है, तथा तीसरे परिच्छेद में स्त्री शिक्षा के विषय में एक लेख दिया गया है। पुस्तक कैसी है, इस विषय का निर्धारण पाठकवर्ग की अनुमित पर ही निर्भर किया जाता है, हाँ इतना कह देना परम आवश्यक है कि इस

कुछ त्रुटियाँ हों उन्हें पाठकवर्ग सुधार कर मेरे परि-
श्रम को सफल करें ।

इस पुस्तक का सशोधन श्रीमान् विद्वद्गुरु श्री पण्डित
जयदयालजी शर्मा शास्त्री (भूतपूर्व ससूत प्रधाना-
ध्यापक श्री डेंगर कालेज-बीकानेर) ने किया है, अतः
उक्त महोदय को मुक्तकण्ठ से धन्यवाद दिया जाता है ।
यदि इस पुस्तक के पठन पाठन से पाठकवर्ग व पाठिका-
वर्ग का कुछ भी उपकार होगा तो मैं अपने परिश्रम को
सफल समझूँगी ।

विनीता—
आर्या भूरसुन्दरी

* श्रीः *

श्री पञ्चपरमेनिष्ठने नमः

❁ भूरसुन्दरी ज्ञान प्रकाश ❁

मङ्गलाचरण



निःसीमभीमभव सम्भव रुद्रगूढ-
सम्मोहभूय लयदारण सारसीरम् ।
वीरं कुवासमलहारि सुवादि पूर-
मुत्तुङ्ग मार करि केसरिणं नमामि ॥१॥

अर्थ—मैं श्री वीर स्वामी को नमस्कार करती हूँ कि जो
(वीर स्वामी) सीमा रहित, भयङ्कर संसार में उत्पन्न
हुए अति कठिन सम्मोह रूपी भू-भण्डल का विदारण
करने के लिए लोहे के हल के समान हैं, कुवासनाओं के
मल को धोने के लिए सुन्दर जल प्रवाह के समान हैं तथा
प्रबल कामदेव रूपी हाथी का नाश करने के लिए सिंह के
समान हैं ॥ १ ॥

धीर शिरोमणि धीर जिन, करत तुम्हारा ध्यान ॥ २ ॥
 सकल शान्ति सुख दीजिये, हरिये सकल अज्ञान ॥ ३ ॥
 प्रबल मोद मम नाशिये, मूल सहित जिनराज ॥ ४ ॥
 निजपद भक्ति सुदीजिये, सुधरें सब ही काज ॥ ५ ॥
 सौम्य बोध दुति धारिणो, सुरपुरयित अभिराम ॥ ६ ॥
 तिनके चरण सरोज ते, भई सुपूरण काम ॥ ७ ॥
 तिन ही के पद कमल में, पुनिपुनि शोष नमाय ॥ ८ ॥
 अल्पबुद्धि नर नारि हित, सब विधि मन में लाय ॥ ९ ॥
 भूरासुन्दरि ज्ञान परकाश रचयो यह ग्रन्थ ॥ १० ॥
 पठन किये ने जासु नर, लहि है सुख को पन्थ ॥ ११ ॥

भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश

❀ प्रथम परिच्छेद ❀

पञ्च परमेष्ठि नमस्कार ।

अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन को परम पद पर स्थित होने के कारण परमेष्ठी कहते हैं, इन को नमस्कार करने तथा इनका ध्यान करने से लौकिक और पारलौकिक सब ही सुख प्राप्त होते हैं, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है, इन को नमस्कार करने का मुख्य मन्त्र श्रीनवकार मन्त्र निम्नलिखित है —

नमो अरिहन्ताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्जायाणं, नमो लोप सव्व साहूणं, पत्तो पच-
णमुकारो, सव्व पावप्पणासणो, मगलाण च सव्वेसिं, पढम
हवइ मगलं ॥ १ ॥

इस मन्त्र का सक्षेप में यह अर्थ है कि अर्हन्तों को नमस्कार है, सिद्धों को नमस्कार है, आचार्यों को

नमस्कार है, उपाध्यायों को नमस्कार है तथा लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार है, इन पाँचों को जो यह नमस्कार करता है वह सब पापों का नाश करता है, तथा सब मङ्गलों में प्रथम मङ्गल है ॥ १॥

इस मन्त्र में नौ पद हैं, उन नौश्लोकों का मङ्गल संख्या ३६२८८० (तीन लाख बासठ हजार आठ सौ अस्सी) है, इस के गुणन की तीन रीतियाँ हैं—आनुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी, इनमें से आदि स लेकर अन्त तक क्रम से गुणन को आनुपूर्वी क्रम कहते हैं, अन्त से लेकर आदि तक क्रम से गुणन को पश्चानुपूर्वी क्रम कहते हैं तथा मध्य के सब भगों को अनानुपूर्वी कहते हैं, इन तीनों क्रमों से गुणन का फल महा प्रभावशाली है—इस विषय में श्री जिनकीर्ति सूरिजी महाराज ने अपन बनाय हुए श्री पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार स्तोत्र के अन्त में बहुत कुछ कहा है, जिसका आशय यह है कि—आनुपूर्वी आदि भगों को अच्छे प्रकार जानकर जो उन्हें भावपूर्वक प्रतिदिन

गुणता है वह सिद्धि सुखों को प्राप्त होता है, जो पाप पाण्डासिक और वार्षिक तीव्र तप से नष्ट होता है वह (पाप) नमस्कार की श्रानुपूर्वी के गुणने से श्राधेक्षण में नष्ट हो जाता है, जो मनुष्य सावधान मन होकर श्रानुपूर्वी के सब ही भंगों को गुणता है वह अति रुष्ट वैरियों से बाँधा हुआ भी शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, इन से अभिमन्त्रित "श्रीवास" से शाकिनी और भूत आदि तथा सर्व भद्र एक क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, दूसरे भी उपसर्ग, राजा आदि के भय तथा दुष्ट रोग नवपद की श्रानुपूर्वी के गुणन से शान्त हो जाते हैं, इत्यादि, जिस मन्त्र के नवपदों की श्रानुपूर्वी आदि के गुणन का इतना बड़ा महत्त्व है उस (मन्त्र) की महिमा का क्या ठिकाना है—इसके विषय में पूर्वाचार्यों का यह कथन है कि:—

नवकार इक्ष अक्षर पावं फेडेइसत्त अयपरं ॥ पञ्चा-
संच पपरं सागर पणसय समग्गेणं ॥ १ ॥

जो गुणइ लखमेगंपूर्पहिं विहीहिं जिण नमुकारं ॥
तित्थपरनामगो अंसोबंध इतत्थि सन्देहो ॥ २ ॥ अष्टेव
अहसया अहसहस्संच अहकोडीओ ॥ जो गुणइ भत्तिजुसो
सा पावइ

अर्थात् श्री नवकार मन्त्र का एक अक्षर भी सात सागरोपमों के पापों को नष्ट करता है इसका एक पद पचास सागरोपमों के पापों को नष्ट करता है यह समग्र मन्त्र पाँच सौ सागरोपमों के पापों का नाश करता है, जो मनुष्य विधिपूर्वक एक लाख बार जिन नमस्कार को गुणता है वह तीर्थङ्कर नाम गोत्र कर्म को बाँधता है, इस में सन्देह नहीं है, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक आठ, आठ सौ, आठ सहस्र तथा आठ करोड़ बार इसका गुणन करता है वह शाश्वत स्थान (मोक्ष पद) को प्राप्त करता है ।

कलिकाल सूर्यन श्री हेमचन्द्राचार्य जी महाराज ने भी अपने बनाये हुए योगशास्त्र नामक ग्रन्थ के आठवें प्रकाश में इस मन्त्र के महस्य का बहुत कुछ वर्णन किया है, जिसका विस्तार के भय से यहाँ पर उल्लेख नहीं किया जाता है ।

पूर्वोक्त मन्त्र का तथा उस की श्रानुपूर्वी आदि का ऐसा महस्य होने से सर्व साधारण के लाभ के लिये यहाँ पर उक्त मन्त्र के केवल पाँच पदों की श्रानुपूर्वी आदि का उल्लेख किया जाता है:—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| २ | १ | ३ | ४ | ५ |
| १ | ३ | २ | ४ | ५ |
| ३ | १ | २ | ४ | ५ |
| २ | ३ | १ | ४ | ५ |
| ३ | २ | १ | ४ | ५ |

शिक्षा—देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ तथा दया में धर्म, ये तीन सत्त्व व्यावहारिक हैं।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ३ | ५ |
| २ | १ | ४ | ३ | ५ |
| १ | ४ | २ | ३ | ५ |
| ४ | १ | २ | ३ | ५ |
| २ | ४ | १ | ३ | ५ |
| ४ | २ | १ | ३ | ५ |

शिक्षा—देव आत्मा, गुरु ज्ञान तथा शुद्ध उपयोग में धर्म ये तीनों धर्म के निश्चय तत्त्व हैं।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ४ | २ | ५ |
| ३ | १ | ४ | २ | ५ |
| १ | ४ | ३ | ० | ५ |
| ४ | १ | ३ | २ | ५ |
| ३ | ४ | १ | २ | ५ |
| ४ | ३ | १ | २ | ५ |

शिक्षा—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चरित्र ये तीनों मुक्ति के मार्ग रूप हैं ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | २ | ८ | १ | ५ |
| ५ | २ | ८ | १ | ५ |
| २ | ८ | ५ | १ | ५ |
| ८ | २ | ५ | १ | ५ |
| ५ | ८ | २ | १ | ५ |
| ८ | २ | ५ | १ | ५ |
| २ | ५ | १ | १ | ५ |

शिक्षा—धर्म के चार भेद हैं—ज्ञान, शील, तप, और भाव ।



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ५ | ४ |
| २ | १ | ३ | ५ | ४ |
| १ | ३ | २ | ५ | ४ |
| ३ | १ | २ | ५ | ४ |
| २ | ३ | १ | ५ | ४ |
| ३ | २ | १ | ५ | ४ |

शिक्षा—वित्त देने वाले के भाव रहता है, वित्त वही है जो निर्दोष है, पात्र वही है जो अधिकारी है, दान का फल सुपात्र को ही देने से होता है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ५ | ३ | ४ |
| २ | १ | ५ | ३ | ४ |
| १ | ५ | २ | ३ | ४ |
| ५ | १ | २ | ३ | ४ |
| ५ | ५ | १ | ३ | ४ |
| २ | ५ | १ | ३ | ४ |
| ५ | २ | १ | ३ | ४ |

शिक्षा—सदाचार के पालन और विषयों से निवृत्ति का नाम शील है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ५ | २ | ४ |
| ३ | १ | ५ | २ | ४ |
| १ | ५ | ३ | २ | ४ |
| ५ | १ | ३ | २ | ४ |
| ३ | ५ | १ | २ | ४ |
| ५ | ३ | १ | २ | ४ |

शिक्षा—इच्छा का निरोध (रोकना) और गुणवानों की भक्ति; इसी का नाम तप है।



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ५ | ४ | ३ |
| २ | १ | ५ | ४ | ३ |
| १ | ५ | २ | ४ | ३ |
| ५ | २ | ५ | ४ | ३ |
| २ | ५ | १ | ४ | ३ |
| ५ | २ | १ | ४ | ३ |

शिक्षा—क्षमा अमृत है, उद्यम मित्र है, सत्य निर्मयता शायक है तथा सन्तोष सुख है, अतः इन का अग्रगण्य मेवम करना चाहिये ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ४ | ५ | २ | ३ |
| ४ | १ | ५ | ५ | ३ |
| १ | ५ | ४ | २ | ३ |
| ५ | १ | ४ | २ | ३ |
| ४ | ५ | १ | २ | ३ |
| ५ | ४ | १ | २ | ३ |

शिक्षा—मेरी ही बात सत्य है, इस हठ का त्याग करना चाहिये तथा विश्वासघान कभी नहीं करना



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ४ | ५ | २ |
| ३ | १ | ४ | ५ | २ |
| १ | ४ | ३ | ५ | २ |
| ४ | १ | ३ | ५ | २ |
| ३ | ४ | १ | ५ | २ |
| ४ | ३ | १ | ५ | २ |

शिक्षा—इस बात को सत्य मान लो कि जो समय निकल जाता है वह किसी प्रकार से भी हाथ में नहीं आता है, इसलिए जो मनुष्य समय को बूथा गमावेगा वह पीछे अवश्य पड़तावेगा ।



Handwritten signature or mark

Handwritten signature or mark

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ४ | ५ | १ | ३ |
| ४ | २ | ५ | १ | ३ |
| २ | ५ | ४ | १ | ३ |
| ५ | २ | ४ | १ | ३ |
| ४ | ५ | २ | १ | ३ |
| ५ | ४ | २ | १ | ३ |

शिक्षा—स्मरण रखो कि एक दिन अवश्य मरना है, इस-
लिये परोपकार को मत भूलो, गुरु के अवगुण का कथन करने
वाला तथा उनके उपकार को न मानने वाला कृतघ्न होता है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ४ | ५ | २ |
| ३ | १ | ४ | ५ | २ |
| १ | ४ | ३ | ५ | २ |
| ४ | १ | ३ | ५ | २ |
| ३ | ४ | १ | ५ | २ |
| ४ | ३ | १ | ५ | २ |

शिक्षा—इस बात को सत्य मान लो कि जो समय निकल जाता है वह किसी प्रकार से भी हाथ में नहीं आता है, इसलिए जो मनुष्य समय को वृथा गमावेगा वह पीछे अवश्य पछतावेगा ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ५ | ४ | २ |
| ३ | १ | ५ | ४ | २ |
| १ | ५ | ३ | ४ | २ |
| ५ | १ | ३ | ४ | २ |
| ३ | ५ | १ | ४ | २ |
| ५ | ३ | १ | ४ | २ |

शिखा—श्रौंकार का ध्यान सदा इकला, पिङ्गला और सुषुमना आदि दशों द्वारों का रोक कर करना चाहिये ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ४ | ५ | ३ | २ |
| ४ | १ | ५ | ३ | २ |
| १ | ५ | ४ | ३ | २ |
| ५ | १ | ४ | ३ | २ |
| ४ | ५ | १ | ३ | २ |
| ५ | ४ | १ | ३ | २ |

शिक्षा—विचार करो, मूर्ख मत बनो, पाप और पुण्य के स्वरूप को समझो, पाप की निन्दा करो, पापी की नहीं, आत्मा की निन्दा करो किन्तु परमात्मा की निन्दा मत करो ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३ | ४ | ५ | १ | २ |
| ४ | ३ | ५ | १ | २ |
| ३ | ५ | ४ | १ | २ |
| ५ | ३ | ४ | १ | २ |
| ४ | ५ | ३ | १ | २ |
| ५ | ४ | ३ | १ | २ |

शिक्षा—मूलं लोग जुआ, परदारगमन और घेस्या गमन आदि हानिकारक कार्यों में घृथा ही अपव्यय करते हैं, यदि यही द्रव्य घर्म कार्यों में व्यय किया जाये तो कितना लाभ हो सकता है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ३ | ४ | ५ | १ |
| ३ | २ | ४ | ५ | १ |
| २ | ४ | ३ | ५ | १ |
| ४ | २ | ३ | ५ | १ |
| ३ | ४ | २ | ५ | १ |
| ४ | ३ | २ | ५ | १ |

शिक्षा—यह बात बिलकुल सत्य है कि जहाँ धर्म है वहीं विजय है तथा जहाँ पाप है वहाँ क्षय है, इसलिए निश्चय है कि सत्य प्रतधारी ही ससार सागर से पार होगा।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | २ | ५ | ४ | १ |
| ३ | २ | ५ | ४ | १ |
| २ | ५ | ३ | ४ | १ |
| ५ | २ | ३ | ४ | १ |
| ३ | ५ | २ | ४ | १ |
| ५ | ३ | २ | ४ | १ |

शिक्षा—सर्वसङ्ग परम लाभदायक है सन्तोष परम धन है, विचार परम ज्ञान है तथा समता परमसुख है ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ४ | ५ | ३ | १ |
| ४ | २ | ५ | ३ | १ |
| ० | ५ | ० | ३ | १ |
| ५ | २ | ४ | ३ | १ |
| ४ | ५ | २ | ३ | १ |
| ५ | ४ | २ | ३ | १ |

गिज्ञा—मनुष्य जन्म, साधु दर्शन, धर्म का श्रवण, सच्ची श्रद्धा तथा धर्म का आचरण ये सब सत्कार में दुर्लभ हैं।

| | | | | |
|----|---|---|---|---|
| ३ | ४ | ५ | २ | १ |
| ६ | ३ | ५ | २ | १ |
| ७ | ५ | ४ | २ | १ |
| ८ | ७ | ४ | २ | १ |
| ९ | ८ | ३ | २ | १ |
| १० | ९ | २ | २ | १ |

शिवा—जा कर लिया जावे वही काम है, जो भज लिया है सो ही राम है, जो श्रद्धा काम करना हो उसे अभी कर लो क्योंकि यह समय फिर किसी प्रकार से हाथ में नहीं आयेगा ।

यह पाँच पदों की श्रानुपूर्वी श्रादि का उल्लेख किया गया है, इसके अनुसार जो गुण न करेगा तथा नीचे लिखी शिक्षाओं को सदा हृदय में स्थान देगा वह अवश्य कल्याण का भागी होगा, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ।

* इति प्रथमः परिच्छेदः *

द्वितीय परिच्छेद

१-उपदेश के दोहेः—

ज्ञान लहारे प्राणियाँ, तासे शिव सुख होय ।
ज्ञान बिना नरवा पुरा^१, मुक्ति न आवे कोय ॥ १ ॥
श्री जिनराज ब्रह्मानिया, दशरैकालिक माहि ॥
प्रथम पढ़ो तुम ज्ञान को, जासे शिव सुख थाय ॥ २ ॥
ज्ञान रूप है मनुज^२ को, और रूप नहि कोय ॥
ज्ञान बिना नर बापडा^३, गया जनम को खोय ॥ ३ ॥
ज्ञान गुम^४ धन जगत में, चोर न लूटे कोय ॥
सज्जन तो बटि नहीं, कबहुँ न रोता^५ होय ॥ ४ ॥
कोस बडा है ज्ञान का, इस का नहि है पार ॥
खरबत ही बाढे सदा, सञ्चय^६ लई विकार ॥ ५ ॥
ज्ञान बिना नर दोर^७ है, जैसा जगल रोज ॥
होश नहीं है आपका, कैसे आतम खोज ॥ ६ ॥

१ बचारा । २ मनुष्य । ३ बेचारा । ४ दिशा हुमा । ५ खाली ।
६ इकट्ठा करन से । ७ पशु ।

ज्ञान बिना निपकल जनम, श्वान^१ पूँछ जिमि जान ॥
 मशक^२ दूर होवे नहीं, वृथा जन्म इम जान ॥ ७ ॥
 ज्ञान बिना नर अन्ध^३ हे, देखो हृदय पिचार ॥
 सत्यासत्य विवेक नहीं, कैसे हो भव पार ॥ ८ ॥
 भय निद्रा अरु मैथुन^४, पशु नर एक समान ॥
 मानुष^५ ज्ञान विशेष है, सब में नर परधान ॥ ९ ॥
 ज्ञान बिना आदर नहीं, कोय न माने बोल ॥
 ज्ञान बिना नर बापडा, इत उत^६ डामाडोल ॥ १० ॥
 नर भव उत्तम पाय कर, दीपक ज्ञान विचार ॥
 तीन लोक की सम्पदा, नरभव माहीं धार ॥ ११ ॥
 भली बुरी सब वस्तु की, ज्ञान होत पहिचान ॥
 अज्ञानी जाने नहीं, कैसे लाभरु हान ॥ १२ ॥
 ज्ञान जोति परगट भये, मिटे मृषा^७ अंधकार ॥
 अन्तर ज्योति उदोत^८ हो, तब हो भव के पार ॥ १३ ॥
 ज्ञानभानु^९ है जगत में, करत तिमिरि^९ को नाश ॥
 जब घट जोति प्रकाश हो, होत जगत को भास ॥ १४ ॥

१—कुत्ता । २—मच्छर । ३—अन्धा । ४—मनुष्य में ।
 ५—इधर उधर । ६—मिथ्या । ७—प्रकाशित । ८—सूर्य ।
 ९—अन्धकार ।

ज्ञानी नर जानत अर्हे, ज्ञानदान की बात ।
जिमि प्रसून^१ की वक्षना^२, जानन सुन की मान ॥ १५ ॥

ज्ञानि परिश्रम मूर्ख जन, क्यहुँ न जानन कोय ।
यामि तिया जाने नहीं, जनमे वक्षन जोय ॥ १६ ॥

म्हाय धोय सज्जित^३ हुआ, चारु^४ मनोहर वेस ।
विना ज्ञान शोभे नहीं, विना भूप जिमि देस ॥ १७ ॥

तिय नहीं शोभन नर विना, पुत्र विना जिमि गोह^५ ।
बोध विना तिमि मनुज को, कैसे पाप नसेह ॥ १८ ॥

नयन विना जिमि काजला, शोभन नाहिं लिग्यार^६ ।
बोध विना तिमि जगतनर, गया जमारा द्वार ॥ १९ ॥

जगजानी नर सुघड है, कर आत्महित काज ।
तिहितें आत्महिं शुद्ध करि, पावत सौख्य समाज ॥ २० ॥

मन बच धिरता धारिक, जो सुख आत्मम माहिं ।
इन्द्र चक्रि अरु हलधरा, तासम सुख है माहिं ॥ २१ ॥

बालुभीति सम जानिये, यह ससार अनित्य ।
गुरु किरपातें होत है, मन जोनी^७ आदित्य^८ ॥ ॥

१—वाजक की उत्पत्ति । २—रीझा । ३—तेगार व सुन्दर ।

४—धर । ६—ब्रह्मी । ७—प्रकाश । ८—सूर्य ।

पढ़ने में गुण एक है, अनुभव होत करोड ।
 इस से मन को रोक कर, ज्ञान विचारो जोड ॥ २३ ॥
 श्रन्तर^१ मेल न जात है, किये बाह्य^२ उपचार^३ ।
 जैसे धोये बहिर तें, शीशी मेल न जाय ॥ २४ ॥
 जो तू चाहे जीव सुख, भोगन तें मन फेर ।
 जगह जगह भटके मती, निज आत्म को हेर ॥ २५ ॥
 अनुभव दीपक सामने, जलते कर्म पतङ्ग ।
 ऐसेहि ज्ञान समाजतें, मिटत भस्म को श्रग ॥ २६ ॥
 काम क्रोध को बश करी, भोगन तें मन खींच ।
 जो तू चाहत आत्मसुख, रत^४ हो ज्ञान के घींच ॥ २७ ॥
 बिना विचारे ज्ञान के, मत भौंके जिमि खान^५ ।
 मान शत्रु को त्यागि के, निज आत्म पहिचान ॥ २८ ॥
 कामधेनु ज्ञाना पुरुष, ज्ञानदुग्ध दातार ।
 पान करत सुख ऊपजे, दोष करत है छार^६ ॥ २९ ॥
 बिना विचारे ज्ञान के, किये कष्ट वेपार ।
 पञ्चाश्री तप तापिया, मिटी न यम की मार ॥ ३० ॥

१—भीतर का । २—बाहरी । ३—उपाय । ४—तत्पर ।
 ५—कुत्ता । ६—नष्ट ।

भूर सुन्दरा शान प्रकाश

पारस क श्रु शान क अन्तर^१ अधि^२ महान ।
 वह लोहा कञ्चन^३ करे वह द^४ निरवान^३ ॥ ३१ ॥
 चित्रमल सम जानिय, शानतणो भएडार ।
 ज्यों निकसे त्यों त्यों बढ़ क्यहुँ न छाज^४ लिग्यार^५ ॥ ३२ ॥
 अनैत शान नितराग को याम मीन न मेख ।
 ज्यों घन घरसे तरुपलै^६ य हा श्रोपम देख ॥ ३३ ॥
 गुरु किरपा तें पाइये शान तणो भएडार ।
 करो सेव गुहद^७ की हो भव सिन्धू पार ॥ ३४ ॥
 जैसे त्रिीय अनन्त हँ तैस शान अनन्त ।
 पारनै पाव यासु को, शमि भार्य भगवन्त ॥ ३५ ॥
 शाखन पढ़ि पढ़ि जग मरा शाना भया न कोय ।
 मन को वश करि भ्यानकर, गुरु बताव तोय ॥ ३६ ॥
 डाइ अक्षर नाम क श्र उ अर्धमकार ।
 तीन^७ योग धिर राखि क जपे दूर जजाल ॥ ३७ ॥

१—कठ । २—सोना । ३—मोक्ष । ४—घन्टा है ।

५—जग भी । ६—बृत्त । ७—मन, वचन काय ।

जिना ज्ञान मिलता नहीं, इसका अगम^१ विचार ।
 इगला पिंगला सुपुमना, इनका करो विचार ॥ ३८ ॥
 अ में अरिहंत वसत हैं, मन माहीं तू देख ।
 आचारज को वास पुनि, अ में निश्चय पेख^२ ॥ ३९ ॥
 उवज्जाय^३ उ में समझ, म में मुनी समाय ।
 षँच परमेष्ठी वसत हैं, ओंकार के माँय ॥ ४० ॥
 जोगी जगम से बडा, सन्यासी दरपेल ।
 ओंकार सब रटत हैं, यार्ते मिटत कलेस ॥ ४१ ॥
 शुभ दर्शन^४ हिरदै धरो, सुनो भविक चितलाय ।
 जहाँ ज्ञान तहें दर्श^५ है, युगपद ये कहलाय ॥ ४२ ॥
 दर्शन बिन निपफल सभा, शास्त्र कहत पूकार ।
 निश्चय श्रद्धा धारिके, कम कटक^६ परजार^७ ॥ ४३ ॥
 प्रथम लङ्घन^८ श्रद्धान का, समता है सुज्ञान ।
 रिपू^९ मित्र सम जानलो, निश्चय करो पिछान ॥ ४४ ॥
 राग द्वेष जिनके नहीं, नहि ईरपा^{१०} परहार^{११} ।
 प्रथम लङ्घन^{१२} श्रद्धान का, यह उर^{१३} माहीं धार ॥ ४५ ॥

१—अगम्य, कठिन । २—दख । ३—उपाध्याय । ४—दर्शन ।
 ५—दर्शन । ६—सेना । ७—जलादो । ८—लक्षण । ९—शत्रु ।
 १०—ईर्ष्या । ११—प्रहार । चोट । १२—लक्षण । १३—हृदय ।

चित्तसवेगाद् वसत है, ध्रुवावन्त के नायि ।
भोगों से उपरत^१ रहै, विषय वासना^२ नायि ॥ ४६ ॥

संकल्प मन का दूर कर, कर आत्म हित काज ।
धारि हृदय वैराग^३ को, पाश्रो सौख्य समाज ॥ ४७ ॥

तीसर लच्छु नि वेग^४ है, त्यागि जगत को साथ ।
आसबुन्द सम जानिये, क्यों बनता तू नाथ^५ ॥ ४८ ॥

तन धन यौवन विभज पुनि, मिथ्या सब परिवार ।
तेरा साथी है नहीं, मातु पिता सुन^६ नार ॥ ४९ ॥

ध्रुवावन्त है सोहिनर, मान करत जो दूर ।
काम क्रोध अरु लोभ इ नाशत है जो शूर^७ ॥ ५० ॥

तुय^८ भेद अज्ञान का अनुकम्पा सुख साज ।
साता दो सब जीव को यहा धर्म को काज ॥ ५१ ॥

अनुकम्पा मन में नहीं, फिरता डामाडोल ।
जैसे जंगल का पशु, कोइ न पूछे मोल ॥ ५२ ॥

१—निवृत्त । २—विषयों की इच्छा । ३—वैराग्य ।

४—निर्वेग । ५—प्रबोध । ६—पुन । ७—शूरी । ८—बोया ।

पर दुख को दूरहि करो, तन मन द्रव्य लगाय ।
 जो सुख चाहो जीव का, अनुकम्पा मन लाय ॥ ५३ ॥
 आस्था लच्छुन^१ पाँचवाँ, रखो हृदय के बीच ।
 वीतराग ने भाविया^२, हटे कर्म की कीच ॥ ५४ ॥
 पाँच लच्छुन दर्शनतणा^३, रखो मन के बीच ।
 ये जिसके घट में नहीं, वही नीच का नीच ॥ ५५ ॥
 चार अंग जो धर्म के, दुपकर^४ श्रद्धा जान ।
 कठिन अंग दर्शन अहै, इमि^५ भाष्यो^६ भगवान ॥ ५६ ॥
 ज्ञान दर्श को साधलो, निश्चय आत्म माँय ।
 भव भ्रम शीघ्रहि मिटत है, शीघ्र मुक्ति हो जाय ॥ ५७ ॥
 शुभ चारित्रहि पाल लो, नये शीघ्र भव ताप^७ ।
 सुमती^८ गुपती^९ साध लो, कुमती दूरहि थाप ॥ ५८ ॥
 दयाधर्म को आदरो प्रथम महाव्रत पह ।
 दूजो मिथ्या परिहरो^{१०}, सिधगतिदायक पह ॥ ५९ ॥
 चौर्य कर्म को परिहरो, यह मोटा अपराध ।
 पाँच श्रद्धत शास्तर कहे, तजै सर्वथा साध ॥ ६० ॥

१—लक्षण । २—कहा है । ३—दर्शन के । ४—दुपकर
 कठिन । ५—इस प्रकार । ६—कहा है । ७—पंसार का दुःख ।
 ८—समिति । ९—गुप्ति । १०—दोड़ दो ।

ब्रह्मचर्य मत ही महा, ही सबको सरदार ।
 इसको सार्धे साधु जन, मोने यही चिकार ॥ ६१ ॥
 हरि हलधर से मोटका, ब्रह्मा विष्णु महेरा ।
 मनमथ^१ से सब हारिया, हारे षडे नरेश ॥ ६२ ॥
 साधु हुआ तो क्या भया, दुर्प^२ न जीत्या जेह ।
 बाहरि करनी सब करी, भीतर खेह का खेह ॥ ६३ ॥
 साधु नाम धराय क, जिहि क मन महुँ नार ।
 भग घोट गाँजा पिये यह तो होत सुधार ॥ ६४ ॥
 ब्रह्मचारि जहि बसत है, जहि तिय^३ जाति बसाय ।
 तहाँ श्रावु^४ नहि बसत है, जहाँ रहत यीलाय^५ ॥ ६५ ॥
 श्रंगहान शत^६ वष का, गूगा श्रंघा नार ।
 जहाँ बसे ब्रह्मचारि तो, बसत न यह निर्धार ॥ ६६ ॥
 जल स्नान नर करत हैं, बाहर मैल हटाय ।
 ब्रह्म सरोवर स्नान तें, अन्तर मैल नसाय ॥ ६७ ॥

१—कामदेव । २—अभिमान । ३—श्री । ४—चूषा ।
 ५—विलाव । ६—सौ ।

बहुत धार श्रसनान हो, परदारा^१ से नेह^२ ।
 ते नर जैसा चूहडा, मुक्ति न पावै तेह ॥ ६८ ॥
 यहि विधि जानि सुजान नर, राखो शुद्ध श्रचार ।
 प्रह्न ज्ञान में न्हायलो, हो जाओ भव पार ॥ ६९ ॥
 साधु परिग्रह सब तजो, वही नरक को मूल^३ ।
 लृष्णा माया मोटकी, मत राचो^४ तुम भूल ॥ ७० ॥
 बाह्य^५ परिग्रह त्याग कर, कहलाते निर्ग्रन्थ ।
 श्रन्तर मल त्यागे बिना, रहे निरे सग्रन्थ ॥ ७१ ॥
 क्रोध मान त्यागे बिना, किया साधु का रूप ।
 निज श्रातम शोधा नहीं, पहुँचे भव जल कूप^६ ॥ ७२ ॥
 पञ्च महाप्रत धारलो, मन बच राखो शुद्ध ।
 काया राखो निर्मली, इरो कुमति को बुद्ध ॥ ७३ ॥
 पाप मार्ग को परिहरो^७, मोक्ष मार्ग पगधार ॥
 निन्दा विकथा परिहरो, श्रालस दूर निवार ॥ ७४ ॥
 ऐसे उत्तम साधु जन, पहुँचै^८ मोक्ष मकार ।
 भव सागर जलदी तिरै, जिन वाणी निर्धार ॥ ७५ ॥

१—पर स्त्री । २—स्नेह प्रीति । ३—कारण । ४—कैसे ।

५—बाहरी । ६—कुशा । क्षोभदो ।

मोह बड़ा है राजवी याकी मोटी शीड ।
 इन्द्र चन्द्र सब राजिया, वस कीधा^१ सब मौड ॥ ७६ ॥
 घात करै यह ज्ञान की, निर्मल केवल ज्ञान ।
 अन्नपन्न^२ जिमि होत नहिं, क्यहँ प्रकटित भान^३ ॥ ७७ ॥
 निज आत्मा में ज्ञान है, और नहीं है ठौर ।
 कर्म मैल दूरे हटै, प्रकटै जोति अमौर^४ ॥ ७८ ॥
 मेरा मेरा करत तू, यह भव धीतो जात ।
 तव साथी कोई नहीं, फ्यों तू है ललचात ॥ ७९ ॥
 मोह कर्म के जाल में, फँसे अशानी होर^५ ।
 जैसे मृग कस्तूरियो, भटकत है चहुँ ओर ॥ ८० ॥
 आपहि में तो वसत है, कस्तूरी की गन्ध ।
 पर भूलो पावत नहीं ज्ञान विना नर अध^६ ॥ ८१ ॥
 बूढ़े से ही मिलत है, निज आपा के माँय ।
 जिमि मुका^७ हूँडे मिलत, गहरे जल के माँय ॥ ८२ ॥

१—विद्ये । २—मेघ की घटा । ३—सूर्य । ४—अनुपम ।
 ५—पशु । ६—अन्धा । ७—मोती ।

मलिन मोह को दूर कर, आत्म भूमी माँय ।
 ज्ञान रत्न को ढूँढलो, मुक्ति सीधा जाय ॥ २३ ॥
 मोह कर्म की सेन^१ को, जो जीते वह शूर ।
 कायर^२ नर हारत अहै, निपट अहै जो क्रूर ॥ २४ ॥
 तप की तोप बनायले, ज्ञान गोल धर बीच ।
 मोह फौज भग्गायदे, कर्म तोड दे खींच ॥ २५ ॥
 मोह कर्म के बीच में, वैद्यो चेतन राय ।
 अपना आपो भूलियो, मैं तू करता जाय ॥ २६ ॥
 अनुभव ज्ञान भयो नहीं, नहीं पायो गुरु संग ।
 रीतो^३ रह्यो तू चेतना, चढो न पुन^४ को रंग ॥ २७ ॥
 चेत चेत रे चेतना, अब तो सुरत संभाल ।
 अन्त काल को भूलियो, अर तू घर में चाल ॥ २८ ॥
 ज्ञान बराबर तप नहीं, सब देखा सत्तार ।
 ज्ञान बराबर धन नहीं, कछो शास्त्र को सार ॥ २९ ॥
 ज्ञान करत सो है मनुज^५, शम से पावे सुख ।
 कोप^६ किये ते वापडा^७, भय भय पावे दुख ॥ ३० ॥

१—सेना । २—डरपोक । ३—खाली । ४—पुण्य ।
 ५—मनुष्य । ६—क्रोध । ७—बेचारा ।

गुरु वाणी है आकरो^१, तोभी मिसरी टूक ।
 विषमदु को सम मानल, सब भागे दिल चूक ॥ ६१ ॥
 क्षमा किये बड़ होत है, ऊँचो होय महान ।
 सब जग में शोभा बढ़त, जग में होत प्रधान ॥ ६२ ॥
 क्षमा भाव मन धार कर, क्रोध करो चक्चूर ।
 निशि^२ दिन तुम सुख में रहो, पाश्रो मुक्ति जरूर ॥ ६३ ॥
 क्रोधहिं प्रीति नखात है, क्रोध होत यश हान^३ ।
 जहाँ क्रोध तहाँ धन नहीं, क्रोध पाप की खान ॥ ६४ ॥
 क्रोध किये नरकहिं पड़े, क्रोध से विषधर^४ धाय ।
 काल अनन्ताभय भ्रमे, कबहुँ न सिद्धी पाय ॥ ६५ ॥
 मानदुष्ट अति भयद^५ है, करत नघ्रता नाश ।
 याके यश में जो पड़े, करे नरक में वास ॥ ६६ ॥
 तीन खड्ग को राजिया, रावण मोठो राय ।
 मान तज्यो नहिं ताहिने, पछो नरक के माय ॥ ६७ ॥
 माया सब में है बुरी, करै प्रीति का नाश ।
 नर को ठगिया वैरिनी, घरे कूप^६ में तास^७ ॥ ६८ ॥

१—तीरथ, तीखी । २—रात । ३—यश की हानि ।
 ४—सर्व । ५—भय को घरे वाला । ६—कुमा । ७—उसको ।

दगा किसी का ना सगा, देखो ज्ञान के साथ ।
 आप ठगत है और को, ठगे आप ही हाथ ॥ ६६ ॥
 पाप पिता हे लोभ जग, कछो शास्त्र के माँय ।
 दशमी पैडी यह चढ़े, सब गुण देत नशाय ॥१००॥
 साधु लहून^१ निर्लोभता^२, जो यह राखत चाय ।
 कबहूँ नीचा ना पड़े, लोभ जु जड से जाय ॥१०१॥
 इसक साथे सब सधैं, गुण सब ही है जायँ ।
 जो जीतत है लोभ को, अक्षय^३ पद को पाय ॥१०२॥
 योग मार्ग को साथ कर, मन में राखे लोभ ।
 मोक्ष घाम पावे नहीं, होत नहीं जग शोभ ॥१०३॥
 चम्पा जी मोटी^४ सती, बहुत गुणन की खान ।
 उन की शिष्या अनुचरी^५, भूरसुन्दरी जान ॥१०४॥
 विंगल छन्द जानत नहीं, अलकार नहिँ जान ।
 बुधजन^६ दोष सुधार लें, त्रुटी न देवें ध्यान ॥१०५॥

१—नश्य । २—लोभ का त्याग । ३—प्रविताशी ।
 ४—बड़ी । ५—दासी । ६ पण्डित लोग ।

२—बोधदायिनी शिक्षार्थे

१—राग और द्वेष ये दोनों कर्मों के उपादान हैं ।

२—मन, वचन और शरीर, इन तीनों योगों को वश में करो, क्योंकि इन्हीं को यश में करन से जीव मुक्ति में जाता है ।

३—मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—पहिले वे जो कि कहते नहीं हैं परन्तु विशेष कार्य को करते हैं दूसरे वे जो कि कहते बहुत हैं परन्तु काय कुछ भी नहीं कर दिखलाते हैं, तीसरे वे जो कि बहुत बोलते हैं तथा काय भा बहुत करते हैं तथा चौथे वे हैं जो कि न तो बहुत बोलते हैं और न कार्य ही करते हैं ।

४—उक्त कथन के अनुसार मेघ भा चार प्रकार के होते हैं । एक तो वे जो कि गरजते नहीं हैं और बरसते हैं, दूसरे वे जो कि गरजते बहुत हैं परन्तु बरसत नहीं हैं, तीसरे वे जो कि गरजत भी बहुत हैं तथा बरसते भी बहुत हैं तथा चौथे वे जो कि न तो गरजते हैं और न बरसते हैं ।

५—पुष्प भी चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि सुगन्धित भी होते हैं तथा रसदार भी होते हैं, दूसरे वे जो कि सुगन्धित तो होते हैं परन्तु रसदार नहीं होते हैं, तीसरे वे जो कि रसदार तो होते हैं परन्तु सुगन्धित नहीं होते हैं तथा चौथे वे जो कि न तो रसदार होते हैं और न सुगन्धित ही होते हैं ।

६—पुनः मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि अंगूर के समान बाहर और भीतर से एक जैसे होते हैं, दूसरे वे जो कि बादाम के समान ऊपर से कड़े और भीतर से रसदायक होते हैं, तीसरे वे जो कि छुहारे के समान ऊपर से मधुर और भीतर से कड़े होते हैं तथा चौथे वे जो कि सुपारी के समान भीतर और बाहिर कठिन होते हैं तथा मधुर भी नहीं होते हैं ।

७—पुनः मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो कि अमृत के घड़े और अमृत के ही ढकने के समान बाहर और भीतर से एक से होते हैं, दूसरे वे जो कि अमृत के घड़े और विष के ढकने के समान भीतर से अच्छे होते हैं, बाहर से नहीं, तीसरे वे जो कि विष के घड़े

अमृत के ढकने के समान ऊपर से अच्छे और भीतर से खराब होते हैं तथा चौथे वे जो कि विष के घड़े और विष के ही ढकने के समान बाहर और भीतर से निट्टे होते हैं । तात्पर्य यह है कि पहिल प्रकार के पुरुष हृदय के भी साफ होते हैं तथा मुँह के भा भी ठे होत हैं, दूसरे प्रकार के पुरुष हृदय के साफ होते हैं परन्तु मुँह के कट्टे होत हैं, तीसरे प्रकार के पुरुष मुँह के तो मोठे होते हैं परन्तु हृदय के पापी होते हैं तथा चौथे प्रकार के पुरुष हृदय के भी पापी होते हैं तथा मुँह के भी पापी होने हैं ।

८—स्त्री के पास पुरुष बावला होता है, बालक को खिलाने वाला मनुष्य बावला होता है । दर्पण में निरन्तर मुख को देखने वाला मनुष्य बावला होता है ।

९—कहते हैं कि विवाह में स्त्री बावली होती है ।

१०—जन्म से ही मित्र माता और पिता होते हैं, घर में धन और स्वा मित्र हैं, शराब का मित्र शत्रु और जल है, रोगी का मित्र श्रौचि है, युद्ध में मित्र शत्रु का पुरुषार्थ है, सब सुखों का मित्र विद्या है तथा अन्त समय का मित्र अहिंसाधर्म है ।

११—बहुत कम बोलना, काम पड़े पर बोलना, हँस कर न बोलना, घात करते समय दो पुरुषों के बीच में न बोलना, मर्मभेदी वचन न बोलना, कटु वचन न बोलना, भोजन और भजन करते समय न बोलना, शौच के समय न बोलना, परनिन्दा सूचक वचन न बोलना किन्तु शास्त्र के अनुकूल मधुर, प्रिय, सत्य, तथा हितकारी वचन बोलना, ये वाणी के गुण हैं ।

१२—सर्व जीवों को सुख देने वाला दानी है, पाप से बचने वाला परिडत है, कुलदणों को छोड़ने वाला चतुर है, धर्म में बुद्धि को रखने वाला ज्ञानी है, इन्द्रियों को वश में करने वाला शूवीर है ।

१३—जो परोपकार करता है वह पूरा है, जो पराई चुगली करता है वह अधूरा है, जो सत्य भाषण करता है वह शूवीर है, जो गरीबों का पालन करता है वह धनवान् है तथा जो गरीबों से छीनता है वह दख्खी है ।

१४—राजा, माता, पिता, धनवान, ज्ञानी, मुख, साधु, बालक, स्त्री, नीच, बलवान, परिडत तथा अपने-से अधिक बलवान् इन से कमी विवाद नहीं करना

१५—रास्ते में गमन समय खाना, बात करते समय हँसना, गरं हुई वस्तु का या बिगड़े हुए कार्य का सोच करना, भविष्यत के लिए नवीन २ आशाओं का वाँछना, दो मनुष्यों के बीच में जाकर लड़ा होना या बैठना खड़े २ पेशाब करना, सोते २ खाना, स्त्री से गुप्त भेद कइना, तथा स्त्री के कथन के अनुसार चलना, ये सब मूर्खता के लक्षण हैं अर्थात् इन कार्यों से मनुष्य मूर्ख कहलाता है।

१६—पाप का पिता लोभ है उस को माता हिंसा है उसका भाई झूठ है उस की बहिन कुमति है तथा उस की स्त्री माया है।

१७—धर्म का पिता सतोय है, उस को माना दया है उस का भाई सत्य है, उस की बहिन सुमति है तथा उस की स्त्री सत्सगति है।

१८—प्यास में जल मीठा है, शीत ऋतु में बरख मीठा है, विना देखी बात माठी है तथा अपना गरज सब से मीठी है।

१९—ससार म कडुआ कौन है ? जो विना बुलाये आता है, कण्ठ के विना गीत कडुआ है, कर्कसा नारी के

साथ में गृहवास कडुआ है, विना अवसर की हँसी कडुई है, दुर्जन का वचन कडुआ है, बहरे के आगे रस-कथा कडुई है, अन्धे के आगे शृंगार कडुआ है तथा मूर्खों के आगे ज्ञान कथा कडुई है ।

२०—जो दूसरे के घर माँगने जाता है वह तिनके से भी तुच्छ है ।

२१—सुपुत्र सोने से भी अधिक प्यारा और मूल्यवान् है ।

२२—यश दूध से भी उजला होता है तथा कलङ्क काजल से भी अधिक काला है ।

२३—सूर्य से भी अधिक तेज वाला नेत्र है तथा क्रोध अग्नि से भी अधिक जलाने वाला है ।

२४—रूपण मनुष्य लोहे से भी अधिक कठिन है क्योंकि लोहा तो ताप से नरम हो जाता है परन्तु रूपण मनुष्य परिताप से कदापि नरम नहीं होता है ।

२५—धनमद, रूपमद, राजमद तथा सब मदिरा से भी अधिक मादक होते हैं ।

२६—साधु को उचित है कि तपस्या रूपी उषटन से शरीर को शुद्ध करे, उस उषटन में उपशम रूपी मसाला डाल, उसे ज्ञान रूपी जल से भिगोव, उसमें शील रूपी पुगन्धि को डाल, ध्यान रूपी लेपन करे।

२७—मनुष्य को उचित है कि भगवान् की आशारूपी मुकुट का धारण करे, प्रभु के वचन रूपी कुण्डल को कान में पहने, दया रूपी हार को हृदय में धारण करे, शान, दम, सत्य, सन्तोष और आज्ञा रूपी आभूषणों को श्रंग में पहन, मनरूपा घोड़े पर सवारी करे, त्रियेक रूपी लगाम को पकड़े रहे, क्षमा रूपी राइग को संभाले रहे, धीरज रूपी डाल को हाथ में रखे, कर्म रूपी शत्रु को हटाये तथा शिखरमणी से प्रेम करे तो वह चौरासी में भ्रमण से बच जायगा।

२८—गृहस्थ का धर्म यह है कि यह सदा शीलवान् और सदाचारी बने सदा सत्य भाषण करे, विद्या का अभ्यास कर विद्वान् बने, श्रल्प और सात्विक आहार करे, उदारचित्त बने, तेजस्वी हो, प्रतिज्ञा का पालन करे, विश्वास देकर दगा न करे, सब जीवों पर दया का पालन

करे, ब्रह्मज्ञान का अभ्यासी बने, तीनों समयों में प्रभु का ध्यान करे सर्वदा कुल की लज्जा रखे, गम्भीर बने, किसी के दोष को प्रकट न करे, शूरवीर बने, दान देने में सर्वदा उद्य विचार रखे, परोपकार में तत्पर रहे, किसी की निन्दा न करे, देव, गुरु, माता और पिता की तन, मन से सेवा करे, इस लोक और परलोक का भय रखे, लोक में निन्दा हो ऐसा कार्य न करे, दीन को न सताये, बड़ों की मर्यादा को न तोड़े, शत्रु से सम्बन्ध खूब विचार कर करे, निन्दक और मुखर मनुष्य से मन के रहस्य को प्रकट न करे, पर स्त्री से वा पर पुरुष से एकान्त में खड़े रह कर बात न करे, बड़ों की शिक्षा को माने, विश्वास घाती का सग न करे, प्राणान्त कष्ट पडने पर भी ब्रह्मचर्य धर्म से न हटे, नीच का कदापि सग न करे, बड़े पुरुषों से सर्वदा प्रीति करे, जुआरा, मासभक्षी, मद्यपानकर्ता, वेश्यागामी, जीवहिंसाकर्ता, चोर तथा परस्त्रीगामी, इनका सग कर्मी न करे, बड़ों से भूल होने पर भी उनके दोष को सभा में प्रकट न करे और न उनका मान भग करे, अपनी प्रशंसा स्वयं न करे, सासारिक अनेक रिधनों के होने पर भी धर्मारोधन का त्याग न करे, नीच मनुष्य

भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश

न छेड़े क्योंकि उसक छेड़ने से अपनी लघुता होती है, प्रोधी पुरुष को न छेड़े, अपने घर के सुख दुःख वा भेद को दूसरे से न कहे, क्योंकि कहने से अपना हल्कापन होता है, क्रोध आने पर विचार के घौले, जवान में ज्ञान को लगाम रखे, बड़े के साथ विवाद और हठ को न करे तथा सासारिक अनेक झगड़ों के होने पर भी दो घड़ा प्रभु का ध्यान अवश्य करे।

२६—केवल सत्य की जय होती है, झूठ की कभी नहीं होती, सत्य की सहायता से श्रुतिगण द्वायान मार्ग से परमात्मा के परमधाम को पहुँचते हैं। (उपनिषद्)

३०—बलघाणकारी कर्म करने वाले की न इस लोक में दुःगति होती है और न परलोक में। (श्रीमद्भगद्गोता)

३१—जैसा परम ज्ञान महापुरुषों के चरण सेवन से मिलता है वैसा वैदिक कर्म, दान, गृहस्थधर्म पालन, वेदाध्ययन, जल, अग्नि या सूर्य की उपासना आदि कर्मों से कभी नहीं मिल सकता। (भागवत)

३२—क्रोध, दुष्कर्म, कृपणता तथा असत्य को जीतने के शस्त्र क्रम से क्षमा, सुकर्म, उदारता और सत्य हैं।

३३—मूर्ख कोन है ? जो बकवाद करता है । मूर्ख को चाहिये कि सभा में मुँह न खोले और बुद्धिमान् केवल प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही बोले । बहुत सुनना और थोड़ा बोलना ही बुद्धिमान् का लक्षण है । (बुजुर्चिमिहर)

३४—जो ज्ञान की बड़ी २ घातें बनाते हैं पर जिनके हृदय में दया नहीं है, वे जरूर नरक में जावेंगे । (कबीर)

३५—वे मनुष्य धन्य हैं जो दयाशील हैं, क्योंकि परम पिता की अपनी दया के वे ही भागी हैं । (ईसा)

३६—शूरवीर वे ही हैं जिनका हृदय भगवान् की भक्ति से भरपूर है । (नानक)

३७—जो दूसरे के श्रवण की चर्चा करता है वह अपना श्रवण प्रकट करता है । (बुद्ध)

३८—मनुष्य को चाहिये कि अपना मित्र आप ही बने, बाहरी मित्र की खोज में न भटके । (जैन सूत्र)

३९—जो सच्चे हृदय के साधु हैं वे मन को पीस कर चाले हुए मेदे की भाँति कर देते हैं, जिसमें मान या गर्व की किरकिरी नहीं । (पारसभाग)

४०—भक्त वह है जो अपने मन को पृथिवी के समान सदिष्णु और परापकारी बनाए, जिसमें लोग खाद डालते हैं, परन्तु वह अन्न दाता है। (जगजीवन साह्य)

४१—जिस बात से समाज का सुख पहुँच, उसमें यदि तुम्हें कुछ दुःख भी पहुँचता नाराज मत हो। (मारकम आरालियस)

४२—जो मूल अपना मूलता को जानता है वह धीरे-धीरे र सौख्य सकता है, परन्तु जो मूल अपने का बुद्धिमान् समझता है उसका राग असाध्य है। (अफलातून)

४३—जो बाहर से बहुत सुन्दर है पर जिसका मन मैला है, उससे तो केशी अच्छा है जो बाहर मात्र एक रंग है। (दरिया साह्य)

४४—ससार में तीन बातें बड़ी उपकार करने वाली हैं परन्तु धारण करने में कठिन हैं—निर्धनता में उदारता, एकान्त में इन्द्रिय निग्रह और भय में सत्य। (अज्ञात)

४५—अच्छे गुणों को सीखने में तुम्हारी यह धारणा होना चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधार का है, न कि लोक में बड़ाई पाने का। (चीनी महात्मा)

३-पहेलियां ।

कनक पलट^१ ताकी सुता^२ ता पति^३ के पितु^४ जोय ।
 अरघ नाम^५ ताकी अमर, करना मुशकिल होय ॥ १ ॥
 आदि अक्षर बिन जगको ज्याये, मध्य अक्षर बिन जग सहारे ।
 अन्त्य अक्षर बिन लागत माठा, वह सवकेमैं नयनों दीठा^६ ॥ २ ॥
 गुरु जी तुम्हरे दरश की, बार बार मोहिं चाह ।
 अख चर्ण^७ अरु मीन घर^८, मिलन देत है नाय ॥ ३ ॥
 सोना को ठील्यो^९ रूपे की ईस^{१०}, दो जन बैठै करै जगीस ।
 चावत बीडी थूकन पान, दोय जनों के बाईस फान ॥ ४ ॥
 आद वह अन्त वह रह मध्य अरु माय ।
 तुम दर्शन बिन होत है तुम दर्शन से जाय^{११} ॥ ५ ॥
 कपर्ग का ये आद है परग अक्षर अन्त^{१२} ।
 ये जाते ते शूरमा मुक्ति पावै तुरन्त ॥ ६ ॥
 राधापती के कर बसे^{१३} पञ्च अक्षर ते सुजान ।
 प्रथम अक्षर दूर करि वघे सो मुक्त को आप^{१४} ॥ ७ ॥

१—जनक । २—सोता । ३—राम । ४—जवरथ । ५—जस ।

६—काजन । ७—दान । ८—पानी । ९—रावण ।

११—दई । १२—राम । १३—सुदर्शन । १४—दान ।

वह अपने सुख के सामन स्वर्ग क सुख को तुच्छ समझती थी। केवल पति के चर कमल के दर्शन मात्र से ही सीता अपने को परम सुखी जानती थी। यही कारण है कि सीता उस विकट वन को सुन्दर महल समझती थी, रास्ते में पड़े हुए कागों को पुष्प शय्या समझती थी। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गए तब रामचन्द्रजी ने दण्डक वन में प्रवेश किया। उसी समय दुराचारी रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। सीता को लका में लाकर अपनी घृणिन कामना को पूर्ण करना चाहता था। सीता को राजी करने की विविध चेष्टा करन पर भी उनका सुमेरु समान मन कुछ भी नहीं चला। देखो आश्चर्य की बात तो यह है कि उस समय सीता का सहायक भी कोई न था। सीता क प्राणनाथ हजारों कोस दूर थे ऐसे कुसमय में सीता को श्रति भय बताया गया, घरे वेदना से सीता क विचार को बदलन की चण की गई, मगर सीता ने अपने हृदय को पापाणवत् बनाकर सब कष्टों को सहन किया। सीता का पातिव्रत धर्म पूरा था। इतना कष्ट सहने पर भी शील रूपी आभूषण को काट नहीं लगाया। ऐसी महा सती को भी लोगों ने कलंकित किया तो अपने शील के

प्रभाव से अग्निकुंड को शीतल चन्दन समान जल बनाया । देखो यह कथा तो बहुत बड़ी है परन्तु इस बात के ऊपर ध्यान देना चाहिये सब स्त्री समाज को भी ध्यान देना चाहिये कि सीता सती की तरह सबको अपने शील को रक्षा करनी चाहिये । फिर देखो श्री भीमतियों का वयान है कि यदुवशियों में राजा उग्रसेन की पुत्री राजमतीजी की सगाई वाईसवें तीर्थकर नेमप्रभु से हुई । जब नेमनाथ भगवान् व्याहने को आप तब उग्रसेन राजा ने पशुओं का बाडा भरवाया । नेमप्रभु तोरण पर जाने लगे सब पशु कुल्लाए । अपनी २ भाषा में अर्ज गुजारी तब उनकी पुकार सुनकर तोरण से रथ फेर कर गिन्नार पर्वत पर जाकर सयम अगोकार किया । इधर महलों में स्थित राजल देवी को यह ज्ञात हुआ कि नेमनाथजी ने वैराग धारण कर लिया । इसने राजल के हृदय रूपी कमल को दग्ध कर दिया । कहाँ तो यह परम हर्ष कहा यह विपत्ति का पहाड । सारे राज महल में खलबली मच गई, राजल सती मूर्छा को प्राप्त होगई । 'हे नाथ' 'हे नाथ' ऐसा उच्चारण करते हुए रुदन करने लगी । सर्व कुटुम्बियों ने सब सखियों-ने समझाई मगर उस सती ने

बिखी की भी नहीं सुनी। एक नेम स्वामी के जिना सारा
 ससार शून्य दीखने लगा। यह क्षण भर भी यहाँ न ठहरा
 समस्त भूषण उतार कर वैराग्य में उद्यम करने लगी।
 सब सज्जन ध्यानपूर्वक सुनो। राजल दर्या के सर्तीत्व को
 देख कर सुन कर सब स्त्री समाज को यही आचरण
 श्रगीकार करना चाहिये जैसा राजमती ने अपने शील
 रूपी आभूषण को धारण किया ऐसे ही सर्व स्त्रियों को
 शील श्रगीकार करना चाहिये। दसो कहा तक सतायों का
 बयान करें। फिर दसो सती राणी खेलणा कैसा हुई है।
 अनुमान २५०० वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है
 वैसाला पुर में रत्ना खेलणा का जन्म हुआ था उन के पिता
 का नाम राजा चैटक था। माता का नाम सुप्रभा था। य
 खेलणा राजा श्रेणिक को व्याहा गई थी। इसी शुभ सयोग
 से जैन धर्म को सारे भूमडल में विजय वैजयन्ता उडान
 वाल श्रन्तिम तार्थकर श्री महावीर स्वामी का जन्म हुआ
 था। राजा श्रेणिक की राणा चेला को बाल्यावस्था से
 उत्तमोत्तम शिक्षण वा गई थी जिन से सत्य जैन धर्म
 का मर्म श्रच्छ्रो तरह समझ लिया था। मगर इन का पति
 राजा श्रेणिक बौद्धधर्मी था इसलिए पति और पत्नी को

अपने अपने धर्म की प्रशंसा करते हुए एक दूसरे को अपने धर्म में लाने की प्रेम पूर्वक इच्छा थी। राजा रानी का धर्म में बहुत कुछ वाद विवाद हुआ करता था। मगर अन्त में रानी ने राजा को सत्य धर्म में लाकर धर्म में स्थिर कर दिया। चेडा महाराज का सात हा पुत्री माहा धर्म में पूर्ण प्रेम वाला था। माहा मोटी सता थी। महावीर भगवान ने उनकी तारोफ करा। देखो स्त्रियों में ऐसा रत्न पैदा हुई कि तीन लाख के नाथ ने जिन की प्रशंसा करा। देखो शास्त्र शास्त्री हे, हे मेरी वहनो ! तुम भा सुन कर या पढ़ कर अपना आचरण सुधारो। वृथा जन्म मत खोओ। फिर और भी देखा पवनकुमार की स्त्री अजना को बारह बर तक पति का वियोग रहा फिर तयोज होन क पश्चात् हनुमान जी गर्भ में आए तब सासु ने कलक चढ़ा कर पीहर निकाल दी। पीहर वाले भाई भावन और माता पिता किसी ने भी उन का सत्कार नहीं किया। फिर वन में प्रवेश किया उनके सत्य शील क प्रभाव से देवताओं ने सहायता करा। वन म ही पुत्र पैदा हुआ महान कष्ट उठाया मगर अपने सत्य धर्म क ऊपर कायम रही।

धन्य है ऐसी वीर स्त्रियों को ऐसी मुसायत में भी अपने धर्म पर शूर वीरता रखा। इस ही बात पर सब स्त्रियाँ को ध्यान देना चाहिये और भी सुनो—

ग्राही, सुन्दरो, चन्दन बाता, दमयन्ता, कमलावती, सुलोचना, तारा, कौशिल्या, कुन्ता, शैत्या, पद्मावती, मलयासुन्दरी, नागला एसा एसा सदस्यों सती हुई हैं, बड़े बड़े कष्ट उठाय मरणान्तक कष्ट सहन किया मगर अपने सत धर्म से नहीं डिग्री। जो स्त्री सनातन धर्म में सावधान रहती है उसही का जन्म सफल है

दखो पाणिनि ऋषि ने भाष्य कहा है कि 'सूया न पश्यति राजद्वारा चन्द्रमा सूर्यभा नर जातिर्है। इसका भी सत्ता को नहीं देखना चाहिये। ऐसा व्याकरण वाले कहते हैं, पराये पुरुष का रूप देखना, ईंसी विल्लगी करना उसके साथ कुत्सित शब्द का उच्चारण करना, घुरा घुरी गालिया बकना पराये, पुरुष के साथ होली खलना फिर भी जो ऐसा आचरण करता हुआ अपने को सतीपणा मानती है, धिक्कार है उस स्त्री को जो पता की आशा में न रहकर बच्चाचारी होती है वो स्त्री हमेशा दुर्गति को जाने

वाली होगी, शास्त्रकार भी कहता है कि—लोक लज्जा से तो शील पालती हैं वो भी स्त्री स्वर्ग लोक की अधिकारी होती है। जो मन, वाणी, काय शोकर्ण तीन योग से जो सतीत्व धर्म का पालन करती है वो तो मोक्ष की अधिकारिणी हो सकती है, इसलिये स्त्रियों को अपना सदाचार आचरण शुद्ध करना चाहिये देखो कुछ अन्य मत का भी कथन किया जाता है कि विद्या के विषय में अन्य मतावलम्बियों में भी कैसी कैसी विद्वान् शूरवीर स्त्रियां होगई हैं इनका भी कुछ वर्णन करते हैं—

जैसा कि अन्य सिद्धान्त में भी बहुत वीर स्त्रियों का वर्णन करते हैं। अब कुछ अन्य मत की स्त्रियों का वर्णन किया जाता है।

ये मानी हुई बात है कि प्रत्येक देश प्रत्येक जाति प्रत्येक समाज प्रत्येक व्यक्ति का सुधार सत्-शिक्षा और सद्बिद्या के द्वारा प्राप्त हुए कर्तव्य के विवेक और उस के पालन के द्वारा होता है, वस्तु समझ लेना चाहिये कि गृहस्थाश्रम का सुधार भी इस आश्रम के

मूल भूत^१ स्त्री पुरुषों के सत् शिक्षा और सद्विद्या के द्वारा प्राप्त हुए कर्तव्य के विरुद्ध और उस के पालन के द्वारा ही हो सकता है। सत् शिक्षा और सद्विद्या की प्राप्ति का साधन^२ गुरु क द्वारा उस का अभ्यास करना है। अतएव पूर्व काल में साधारणतया^३ डिजातियों में यह प्रथा^४ प्रचलित^५ थी कि विद्याभ्यास के योग्य अवस्था होने पर बालक और बालिकायें विद्याभ्यास करने के लिए गुरुकुल में भेज दिये जाते थे, और वहाँ वे तल्लचर्य के नियमों का ठीक रीति से पालन कर विद्या का अभ्यास करते थे, और उस की समाप्ति होनपर निज कुल^६ में आते थे। और उसी योग्य अवस्था में शिक्षासम्पन्न^७ विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री का निज जाति में विवाह, सस्कार होना था। वस्तु, पूर्व समय में ऐसे सुयोग्य दम्पतों^८ पर स्पर् में स्नेह भाव को धारण कर तथा अपने २ कर्तव्य का पालन कर अपने गृहस्थाश्रम को व्यतीत करते थे तथा दाम्पत्य स्नेह^९ से उन का यह आश्रम उन के लिए

१—कारणभूत । २—कारण । ३—मासुला तोर म ।

४—रिवाज । ५—जाती । ६—मयने । ७—शिक्षा म युक्त ।

८—स्त्री पुरुष । ९—स्त्री पुरुष का प्रेम ।

सर्ग तुल्य सुखदायक होता था, सन्तान उत्पन्न होकर उस के योग्य बन जाने पर वे दोनों स्त्री पुरुष वानप्रस्थ आश्रम के धर्म का पालन कर श्रौच श्रान्त में संन्यास धर्म का पालन कर आत्मकल्याण के भागी होते थे, खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज वह प्रथा^१ लुप्त प्रायसी होगई है, गुरुकुल में जाकर विद्या का अभ्यास करना तो दूर रहा निजकुल में ही रह कर स्त्री पुरुष का यथार्थ-तया^२ विद्याभ्यास नहीं होता है श्रौच उस में भी स्त्रियों का तो विद्याभ्यास इन प्रकार नाममात्र का रह गया है जो कि नहीं के समान है । अनेक साधनों के प्रस्तुत^३ होने से पुरुषों का तो फिर भी कहीं ० कुछ २ विद्याभ्यास हो भी जाता है परन्तु वेचारी स्त्रियां पूर्व सस्कार वश विद्याभ्यास की इच्छा होने पर भी मुँह ताकती ही रह जाती हैं, निश्चय जान लीजिये कि पुरुष के विद्वान् होने पर भी स्त्री के मूर्खा होने से गृहस्थाश्रम का सच्चा सुख कदापि नहीं मिल सकता है, क्योंकि गृहस्थाश्रम के सुख का

१—रिवाज । २—ठीक रीति से । ३—मौजूद ।

भूमि में जाने वाले एवं कर्त्तव्य का त्याग करने वाले अपने पुत्र को जो सदुपदेश देकर उसे कर्त्तव्यनिष्ठ^१ बनाया था, क्या वह विद्या के बिना कभी हो सकता था ?

श्रुतपयस्क^२ बालक हकीकराय की परम विदुषी माता ने यदि सद्विज्ञान वाले अपने पूर्वोक्त बालक के श्रुतःकरण को परमपवित्र और कर्त्तव्यनिष्ठ न बनाया होता तो क्या वह श्रुतपयस्क बालक निज धर्म की रक्षा के लिए कभी अपने प्राणों का बलिदान कर सकता था ?

यदि सद्विद्यासम्पन्न न होती तो क्या अइत्याबाई^३ पतिदेव के स्वगंधाम पधारने पर सम्पत्तया^३ राज्य कार्य का निर्वाह कर सकती थी तथा आत्मरक्षा और अन्यायी को दण्ड देने के लिए पाँच सौ दासियों को साथ लेकर संग्राम भूमि में उपस्थित होकर अपने विपत्ती^४ गद्दाधर राव का तिरस्कार कर सकती थी ? यदि सद्विद्या और सद्विज्ञान सम्पन्न न होती तो क्या भाँसी की महारानों

१—कर्त्तव्य में तत्पर । २—बोटी प्रवस्था के । ३—मच्छे प्रकार से । ४—शत्रु

दुर्गादेवी साक्षात् दुर्गा का रूप धारण कर समराङ्गण^१ में जाकर शत्रु का परिहार^२ कर आत्मरक्षा कर सकती थी। यदि सद्विद्या के प्रभाव से सम्पन्न न होती तो क्या महाराणी गान्धारी अपने पतिदेव से अधिक न बढ़ने के उद्देश्य से अपने प्रकाश विशिष्ट^३ नेत्रों के होने पर भी पट्टी बांध कर उन्हें दृष्टिविहीन^४ बना सकती थी?

यदि पूर्ण विद्या और विज्ञान से सम्पन्न न होती तो क्या विद्वुषी लीलावती अपने ही नाम से "लीलावती" नामक परम क्लिष्ट^५ गणित ग्रन्थ की रचना कर सकती थी? कि जिसके आशय^६ को समझने में वर्तमान में बड़े बड़े विद्वानों का भी मस्तिष्क^७ चकर खाता है। यदि सर्व शास्त्र निष्णाता^८ न होती तो क्या मण्डन मिश्र की स्त्री उभय भारती शङ्कराचार्य जैसे धुरन्धर विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ कर तथा उनका परामर्श^९ कर अपने पति-देव को संन्यासी होने से बचा सकती थी?

१—लड़ाई का मैदान। २—तिरस्कार। ३—प्रकाश वाले।

४—दृष्टि से रहित। ५—कठिन। ६—मतलब। ७—दिमाग।

८—सब शास्त्रों में। ९—तिरस्कार।

श्रीरामचन्द्रजी के वन जाने के समय जब साथ चलने के लिए सीताजी ने अनुरोध किया तब श्रीरामचन्द्रजी ने अनेक भयों को दिखला कर तथा अनेक हेतुओं का वर्णन कर उन्हें साथ ले जाने के लिए मना किया, परन्तु सीता ने अपनी बुद्धिमानी से उनके सब हेतुओं का खण्डन किया और अपने धर्म को प्रदर्शित कर^१ बहुत ही अनुरोध किया, निदान^२ श्रीरामचन्द्रजी को उनका अनुरोध मानना ही पडा यह सब विद्या की ही महिमा थी ।

शीलवती सावित्रा देवी ने अपने विद्याकोशल^३ से यमराज को अपने वचनों से पराजित कर^४ अपने पतिदेव को यमसदन से वापिस लौटा लिया था । विदुषी गान्धारी अपने पुत्रों से सदा यही कहा करती थी कि "यतो धमस्ततो जय " ॥ यह विद्या की ही महिमा थी ।

विद्यावती और शीलवती एव धर्म के तत्त्व को समझने वाली कुन्ती ने धर्म का विचार कर ब्राह्मण कुटुम्ब की

१—दिखला कर २—मास्त्रिकार । ३—विद्या की बतुराई ।

४—द्वाराकर । ५— जहाँ धर्म है वही विजय है ।

रत्ना के लिए अपने पुत्र का मोह न कर उसे एकाकी^१ राजस के मारने के लिए भेज दिया था ।

श्रीमती अनसूया देवी ने वन में सीताजी के मिलने पर उन्हें पातिव्रत धर्म आदि अनेक विषयों की कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, यह सब विद्या का ही प्रताप था ।

श्री राजा जनक के मार्गी और मैत्रेयी नामक दो भार्यायें थीं, उनमें से मैत्रेयी ने अपने पति से ही ब्रह्म-विद्या को प्राप्त किया था, और उसमें परम प्रवीण^२ थी । कहां तक कहें ऐसे सहस्रश^३ उदाहरण हैं जो कि पूर्व काल में स्त्रियों के सद्विद्या के उपार्जन^४ को सिद्ध करते हैं ।

एक भोजप्रबन्ध के ही देखने से पता चलता है कि महाराज भोज की समा में आकर अनेक विदुषी स्त्रियों ने ऐसे २ उत्तम श्लोक रचकर महाराज भोज को सुनाये थे कि जिन्हें सुनकर महाराजा भोज और उनकी समा के बड़े २ विद्वानों को भी विस्मित^५ होना पडा था ।

यह सद्विद्या का ही प्रभाव था कि पूर्व में सहस्रश^६ विदुषी स्त्रियों ने “धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपत्

१—मकला । २—बहुत चतुर । ३—हजारों । ४—प्राप्ति ।

५—मचम्भे में । ६—हजारों ।

काल परखिये चारी ॥” इस वाक्य का अनुसरण कर घोर-तम^१ विपत्ति काल में भी सर्व कष्टों को सहन कर के भी अपने पति देव की रक्षा कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया था ।

विचार कर देखा जावे तो गृहस्थाश्रम में स्त्री ही सर्व स्वरूप होती है, इसीलिए स्त्री के बिना गृह को जंगल के समान कहा गया है ।

यदि गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष दोनों विद्वान् शिवात्मन्^२, दाम्पत्य स्नेह^३ से विशिष्ट और एक दूसरे से सन्तुष्ट हों तो उस गृहस्थाश्रम का सुख स्वर्गीय सुख की उपमा^४ का अधिकारी हो सकता है । श्री मनुजी ने सत्य कहा है—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ।

यस्मिन्नैव कुलेनित्य, कल्याण तत्रवैधुवम् ॥१॥

अर्थात् जिस कुल में स्त्री से पति सन्तुष्ट^५ रहता है तथा पति से स्त्री सन्तुष्ट रहती है उस कुल का अग्र्य कल्याण होता है ॥ १ ॥

१—मति कटिन १—शिवा स युक्त । ३—स्त्री पुरुष की प्रीति ।

४—मिथाल । ५—प्रसन्न ।

इसके विरुद्ध जहाँ पति और पत्नी में सर्वदा विद्वेष, ईर्ष्या और कलह रहता है उस कुल में लक्ष्मी का नाश होकर अलक्ष्मी अर्थात् दरिद्रता का निवास होता है। इन सब बातों का विचार कर प्रत्येक गृहस्थ का यह परम कर्तव्य है कि वह गृहस्थाश्रम के सुधार के लिए और उसके सुधार के द्वारा शेष आश्रमों के सुधार के लिए स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान दे, क्योंकि स्त्री शिक्षा के बिना गृहस्थाश्रम का वास्तविक^१ सुधार और उससे होने वाला सच्चा सुख कदापि नहीं हो सकता है।

हमारे बहुत से भोले भाइ अपनी अज्ञानता^२ के कारण स्त्री शिक्षा से विरोध करते हैं। अर्थात् स्त्री शिक्षा को अच्छा नहीं बतलाते हैं, वे उसके लिए मन कल्पित^३ प्रमाण यह देते हैं कि "पढ़न से स्त्रिया विगड जावेंगी, पति की आज्ञा में न रहकर स्वतन्त्र^४ हो जावेंगी, प्रत्येक कार्य में पति का सामना करेंगी" इत्यादि, वे उन लोगों के परम मूर्खता के विचार हैं, क्योंकि विद्या एक ऐसी

१—सच्चा । २—मूर्खता । ३—मनमान । ४—स्वाधीन ।

५—बबकूकी ।

वस्तु है कि वह पास में होने से कदापि किसी का किसी प्रकार का भी बिगाड़ नहीं कर सकती है, फिर वह स्त्रियों का बिगाड़ कैसे कर सकती है, विद्या तो वास्तव में एक मधुर फल के बीज के समान है, उसे चाहे जहाँ डाल दो, मधुर फल ही उत्पन्न होगा, किञ्च विद्या एक दीपक^१ के समान है, दीपक को चाहे जहाँ रखा जावे, अवश्यमेव प्रकाश करेगा, इसी प्रकार विद्यारूपी दीपक जिसके पास होगा उसका अन्तःकरण अवश्यमेव प्रकाशयुक्त^२ बन जावेगा । हम उन लोगों से यह भी पूछना चाहते हैं कि यदि विद्या से स्त्रियों का बिगाड़ होता है तो उससे सीता, द्रौपदी, विदुला, लीलावती और सावित्री आदि स्त्रियों का बिगाड़ क्यों नहीं हुआ ? यदि विद्या स्त्रियों के लिए बिगाड़ करने वाली है तो उससे पूर्वोक्त स्त्रियों का भी बिगाड़ अवश्य होना चाहिये था ।

अथ ये लोग जो यह कहते हैं कि “विद्या पढ़ने से स्त्रियाँ पति की श्राप्ता में न रहकर स्वतन्त्र^३ हो जावेंगी तथा प्रत्येक कार्य में पति का सामना करने लगेंगी” सो

१—दीवे । २—प्रकाश वाला । ३—स्वाधीन ।

यह उनका कथन विलकुल अनभिज्ञता^१ का सूचक^२ है, देखो ! विद्या एक ऐसा उत्तम पदार्थ है कि वह भीतरी नेत्रों को खोल देता है, हृदय में सत्य ज्ञान को उत्पन्न कर देता है, अन्तःकरण में शुभ सस्कारों को जागृत करता है, बुद्धि को शुद्ध करता है, आत्मा को बलिष्ठ^३ बनाता है, मन की चंचलता^४ को दूर करता है, दुराग्रह^५ और मिथ्या हठ को हृदय से निकाल देता है तथा कर्तव्य का सदुद्धान कराने मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठ^६ बनाता है, भला ऐसी दशा में विद्या को पाकर स्त्रियों को उसका विपरीत^७ फल कैसे मिल सकता है ? खेद का विषय तो यह है कि ख्रीशिक्षा के विरोधी लोग वास्तव में सद्विद्या के स्वरूप को ही नहीं समझते हैं, वे केवलमात्र श्रद्धाभ्यास के द्वारा नागरी की पुस्तक बाँच लेने मात्र को विद्याभ्यास समझते हैं, हा यह अवश्य सम्भव है कि ऐसे विद्याभ्यास से

१—मूर्खता । २—सूचकाने वाला । ३—बलवान । ४—अस्थिरता, चंचलपन । ५—दुष्टजिद । ६—कर्तव्य में तत्पर । ७—उलटा ।

वस्तु है कि वह पास में होने से कदापि किसी का किसी प्रकार का भी बिगाड़ नहीं कर सकती है, फिर वह स्त्रियों का बिगाड़ कैसे कर सकती है, विद्या तो वास्त्व में एक मधुर फल के घाज के समान है, उसे चाहे जहाँ डाल दो, मधुर फल ही उत्पन्न होगा, किञ्च विद्या एक दीपक^१ के समान है, दीपक को चाहे जहाँ रखा जावे, अवश्यमेव प्रकाश करेगा, इसी प्रकार विद्यारूपी दीपक जिसके पास होगा उसका अन्तःकरण अवश्यमेव प्रकाशयुक्त^२ बन जावेगा । हम उन लोगों से यह भी पूछना चाहते हैं कि यदि विद्या से स्त्रियों का बिगाड़ होता है तो उससे सीता, द्रौपदी, विदुला, लीलावती और सावित्री आदि स्त्रियों का बिगाड़ क्यों नहीं हुआ ? यदि विद्या स्त्रियों के लिए बिगाड़ करने वाली है तो उससे पूर्वोक्त स्त्रियों का भी बिगाड़ अवश्य होना चाहिये था ।

अब वे लोग जो यह कहते हैं कि “विद्या पढ़ने से स्त्रियाँ पति की आशा में न रहकर स्वतन्त्र^३ हो जावेंगी तथा प्रत्येक कार्य में पति का सामना करने लगेंगी” सो

१—दीवे । २—प्रकाश काला । ३—स्वाधीन ।

यह उनका कथन बिलकुल अनभिज्ञता^१ का सूचक^२ है, देखो ! विद्या एक ऐसा उत्तम पदार्थ है कि वह भीतरी नेत्रों को खोल देता है, हृदय में सत्य ज्ञान को उत्पन्न कर देता है, अन्तःकरण में शुभ सस्कारों को जागृत करता है, बुद्धि को शुद्ध करता है, आत्मा को बलिष्ठ^३ बनाता है, मन की चंचलता^४ को दूर करता है, दुराग्रह^५ और मिथ्या हठ को हृदय से निकाल देता है तथा कर्तव्य का सदुद्देश्य कराके मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठ^६ बनाता है, भला ऐसी दशा में विद्या को पाकर स्त्रियों को उसका विपरीत^७ फल कैसे मिल सकता है ? खेद का विषय तो यह है कि श्रीशिवा के प्रीयो लोग वास्तव में सद्विद्या के स्वरूप को ही नहीं समझते हैं, वे केवलमात्र अक्षराभ्यास के द्वारा नागरी की पुस्तक बाँच लेने मात्र को विद्याभ्यास समझते हैं, हाँ यह अवश्य सम्भव है कि ऐसे विद्याभ्यास से

१—मूर्खता । २—सूचकाने वाला । ३—बलवान । ४—अस्थिरता, चंचलपन । ५—दुष्टजिद । ६—कर्तव्य में तत्पर । ७—उलटा ।

कुसस्कार में युक्त किन्हीं स्त्रियों का कुछ विगाड़ हो भी सकता है, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

वास्तव में धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और वदान्त आदि सच्चाइयों के अभ्यास के द्वारा जो ज्ञान संपादन^१ करना है उस सद्बिद्या कहते हैं और इस सद्बिद्या से किसी का कभी और कथञ्चित्^२ भी विगाड़ नहीं हो सकता है, इस विषय में विशेष कथन करना अनावश्यक है, साराश^३ यह है कि सर्वतन्त्र सिद्धान्त से यह बात सिद्ध हो चुकी और मानी जा चुकी है कि पुरुषों की सत् शिदा के समान स्त्रियों की भी सत् शिदा होने से ही गृहस्था धर्म का सुधार के द्वारा सर्व आश्रमों का सुधार हो सकता है, और सत् शिदा के ही द्वारा स्त्री और पुरुष अपने कर्तव्य का पालन कर आत्मकल्याण के भागी हो सकते हैं इसलिए स्त्रियों को अग्र्य शिदासम्पन्न^४ बना कर उनका गौरव किया जाना चाहिये। आजकल जो स्त्री जाति का अपमान^५ किया जा रहा है वह सबथा निन्द्य^६

१—ज्ञानप्राप्ति । २—किसी प्रकार । ३—मतलब ।

४—शिक्षिता । ५—मनास । ६—निन्दा के योग्य ।

श्रीर पुरुषों का अनुचित व्यवहार कहा जा सकता है, देखो मनुजी ने कहा है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ॥१॥

तस्मादेता सदा मान्या, भर्तृभिर्देवरैस्तथा ।

पूज्या भूपयितव्याश्च वस्त्रालङ्कारभूषणै ॥२॥

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार किया जाता है वहाँ सर्व देव विलास करते हैं, किन्तु जिस कुल या घर में इन का सत्कार नहीं किया जाता है वहाँ सर्व दान और पुण्य आदि पवित्र क्रियायें भी निष्फल^१ होती हैं ॥ १ ॥ इसलिए पतियों को तथा देवरों को स्त्रियों का सर्वदा मान करना चाहिये तथा वस्त्र और आभूषण^२ आदि क द्वारा इनका सम्मान^३ कर उन्हें प्रसन्न रखना चाहिये ॥ २ ॥ स्त्रियों का अपमान^४ करने वाले तथा उनको तुच्छ समझने वाले जनों को इन वाक्यों से शिक्षा लेकर उन्हें उनका साथ समुचित बर्ताव करना चाहिये और वह उनके साथ उनका समुचित बर्ताव यही है कि वस्त्र, भोजन और आभूषण आदि के द्वारा वे उनका

लौकिक^१ मान करें तथा उन्हें सद्रिचा, सच्चिदा आर सद्रिज्ञान स सम्पन्न^२ बना कर उनका पारलौकिक^३ मान करें, अर्थात् परलोक में उनको आनन्दकल्याण की प्राप्ति कराये, ऐसा करने में "उमय हाथ मुद मोक्ष" की कदाचित् चरिताथ^४ होगा, अर्थात् गृहस्थाश्रम का सुधार होगा, उसके साथ सुख की प्राप्ति होगा श्रेय आश्रमों का सुधार होकर उनका समुग्रन^५ दशा शर्मा तथा निज कर्त्तव्य पालन के द्वारा हम सत्कार में अक्षय^६ काप्ति पताना लहराना रहनी और परलोक में अनुपम^७ आत्म कल्याण का लाभ होकर अविनाशी शान्ति सुख की प्राप्ति होगी।

इस विषय में श्रेय विचार करने में कर तत्पर का बात कबल यही कहना है कि धार्मी का विस्तार कर आगे की सुधि लीजिये, स्त्री शिक्षा के अभाव^८ से अनजब बड़ी २ हानियाँ हो रही हैं उनको अपने पौरुष^९ के द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रचार कर अर्थात् स्त्रियों और बालिकाओं को

१—लोकसम्बन्धी । २—सुख । ३—परलोक सम्बन्धी ।

४—पूर्व । ५—उप । ६—मविनाशनी । ७—मदुर ।

८—कमी । ९—पुरुषार्थ ।

शिक्षासम्पन्न^१ कर दूर कीजिये, इस विषय में उद्योग किये बिना आपका और जगत् का कल्याण कदापि नहीं हो सकता है, आगे चल कर भार्यारूप को प्राप्त होने वाली मृदु^२ बालिकार्ये पूर्णवयस्का^३ होकर और गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर आपकी प्रदान की हुई वा कराई हुई सत् शिक्षा के द्वारा जब आनन्दभागिनी बनेंगी उस समय उनके विशुद्ध भाव से निकला हुआ आपके लिए शुभाशीर्वाद न जाने आपके और आपके कुटुम्ब के लिए कितना कल्याणकारी होगा, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। सैकड़ों कन्यार्ये पूर्व सस्कार वश विद्याध्ययन के लिए तरस रही हैं, अपने भाइयों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध देख कर तथा अपने लिए शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न देख कर मन को मार उदासीन हो लम्बी साँसें भरकर सर्वज्ञ भगवान् को पुकार कर कह रही हैं कि—

दयानिधि कर दो घेडा पार ॥ टेक ॥

तुम स्वामी हो सकल जगत् के निखिल विश्व आधार ।
घट घट की तुम वेदन जानत, करत दीन उद्धार ।
दयानिधि० ॥ १ ।

१—शिक्षायुक्त । २—कोमल । ३—पूरी अवस्थावाली ।

सकल विश्व रजि तुमही पोषत, ताकी वस्तु संसार ।
मुनिजन सबही तुय गुण गायत, परत आत्म उदार ॥

दयानिधि० ॥ २ ॥

जगमाया के फण्दि पैसि नर, भूलत तुय दिन-मार ।
धानी जन तय भक्ति निरत है पावन निरूपम सार ॥

दयानिधि० ॥ ३ ॥

पाप पुत्र को निमिर छयो दिय सूझन आर न पार ।
विद्या ज्योति पगारहु स्वामी, भय दुख होयहि छार ॥

दयानिधि० ॥ ४ ॥

सकल आधमन भुज भयो है, गृहि आधम नि मार ।
याको हेतु जगत विदिन है, मूरख हैं सब मार ॥

दयानिधि० ॥ ५ ॥

मातु पिता का हु ध्यान नहीं है, निज बाला दित सार ।
नहीं दन है शिच्छा तनिकहुँ, कैस हो निस्तार ॥

दयानिधि० ॥ ६ ॥

पुत्र मय सब सुखा मनायहि, नृत्य गीत करि छार ।
पुत्री जन्म सुनत दिय सुजत, रोषत अंसुवन टार ॥

दयानिधि० ॥ ७ ॥

हम हैं क्या अँगजा नहिं तिनकी, जो ये करत न सार ।
हृदयविदारक हम कहँ जान, मातुपिता धिआर ॥
दयानिधि० ॥ ८ ॥

एम ए. बी ए पढ़ायत पुत्रन, खरचत वित्त अपार ।
पाला शिदा पैसा खरचत, बनत कृपण सरदार ॥
दयानिधि० ॥ ९ ॥

शिदा हीन हम गृहस्थ में जावै, कैसे करे सँभार ।
फ़ूहड कहि सय हम कहँ बोलत, सहँ दुख बेपार ॥
दयानिधि० ॥ १० ॥

पुत्री शिदा हेत सबन मन, उपजायहु रुचि सार ।
जातें सुधरहिं सकल आसरम, अरु होवै निस्तार ॥
दयानिधि० ॥ ११ ॥

जगपोषक सर्वज्ञ प्रभूजी, सर्व जगत आधार ।
सद्बुद्धी पितु मातहिं देवहु, हमारी करे सँभार ॥
दयानिधि ॥ १२ ॥

नारी शिदा पूरण प्रेमी, होय पिता सिरदार ।
पूर्ण भ्याऊँ हमहिं पढ़ावै, जिहि ते होय

सकल विश्व रचि तुमही पोषत, ताकी करत
मुनिजन सबही तुव गुण गावत, करत आत्म-उदर

दयानिधि०

जगमाया के कम्बुहि कौंसि नर, भूलन तुव हित
झानी जन तव भक्ति निरत है, पावन निरुपम

दयानिधि०

पाप पुत्र को तिमिर छयो हिय, सुकन शर न
विद्या ज्योति पसारहु स्वामी, भय दुख होयहि तू

दयानिधि० ॥ १

सकल आश्रमन भूल भयो है, गृहि आश्रम
याको हेतु जगत चिदित है, मूरख हैं सब नार

दयानिधि० ॥ ५

मानु पिता को हु ध्यान नहीं है, निज बाला दिन सार
नहीं देत हैं शिष्या तनिकहुँ, कैसे हो निस्तार।

दयानिधि० ॥ ६ ॥

पुत्र मये सब सुशो मनायहि, नृत्य गीत करि द्वार।
पुत्री जन्म मुनत हिय सुखत, रोयत अंसुवन द्वार ॥

दयानिधि० ॥ ७ ॥

ले जाओ और देखो कि उन्होंने नाशवान् ससार से
 आस्था को हटाकर किस प्रकार परोपकार और भगवद्-
 भजन के द्वारा अपने जन्म को सार्थक^१ किया था, वैसा
 ही स्वयं करने को चेष्टा करो, सासारिक विलास एक न
 एक दिन अग्रश्य हमारा साथ छोड़ देगा, यह विचार कर
 घोखा देने वाले साथी का साथ स्वयं छोड़ कर उस
 साथी का साथ पकड़ो जो इस लोक में तो क्या किन्तु
 परलोक में भी तुम्हारा साथी रहे, ससार को सराय जान
 कर यथेष्ट स्थान पर पहुँचने का लक्ष्य सदा हृदय में
 रखो "मनुष्य जन्म उत्कृष्ट^२ पुण्य और तप से प्राप्त
 होता है" यह समझ कर पूर्वोक्त रत्न का सदुपयोग करो,
 तुमने दुःख सागर से पार होने के लिए उत्कृष्ट पुण्यरूपी
 मूल्य से इस शरीर रूपी नौका को खरीदा है इसलिए
 जब तक यह शरीर रूपी नौका टूट न जाये तब तक दुःख
 सागर के पार उतर जाओ, यदि इन सब बातों का मनन कर
 तुम कर्तव्य-परायण^३ बन जाओगे तो शीघ्र ही तुम्हारा
 और जगत् का कल्याण होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

यालिवाश्यों की उन प्रार्थना को सुनकर सायधान हो जाओ, प्रमाद निद्रा^१ को दूर कर दो आलस्य को अपना वैरी जान उसका तिरस्कार करो, मत्सर की सारना और अमानता की शोर अपना लक्ष्य^२ स जाओ, परलोक के सुख को एक अमूल्य पदार्थ समझो, मत्सर में कांति के रहने को मानव जन्म का साफ-प^३ समझो, जीवन मत्सर और उसका सब पदार्थों को विनश्यत^४ जानकर उनका परोपकार में लगाकर साधन^५ करो, सब संसार को अपना कुटुम्ब जानकर उसका कल्याण और हित के लिए अपने को और अपना सामग्री को उपयुक्त कर अपने मानव जन्म को सफल करो, "किया हुआ पाप और पुण्य ही मरने पर मनुष्य के साथ जाता है" यह विचार कर प्रत्येक दिन, प्रत्येक पहर, प्रत्येक मुहूर्त, प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक क्षण को पुण्यार्जन^६ के द्वारा सफल करो। शरीर अनिय और मलबारी है उस पर आस्था को न कर उसके द्वारा सदगुणों का उपाजन कर नित्य और निर्मल यश का उपाजन करो अपनपूर्वजों की श्राद अपना लक्ष्य^७

१—मकलत की नींद । २—ध्यान । ३—सकलता ।

४—नाशवान । ५—नकल । ६—पुण्यप्राप्ति । ७—ध्यान ।

ले जाओ और देखो कि उन्होंने नाशवान् ससार से आस्था को हटाकर किस प्रकार परोपकार और भगवद्-मज्जन के द्वारा अपने जन्म को सार्थक^१ किया था, वैसे ही स्वयं करने की चेष्टा करो, सासारिक विलास एक न एक दिन अवश्य हमारा साथ छोड़ देगा, यह विचार कर घोखा देने वाले साथी का साथ स्वयं छोड़ कर उस साथी का साथ पकड़ो जो इस लोक में तो क्या किन्तु परलोक में भी तुम्हारा साथी रहे, ससार को सराय जान कर यथेष्ट स्थान पर पहुँचने का लक्ष्य सदा हृदय में रखो "मनुष्य जन्म उत्कृष्ट^२ पुण्य और तप से प्राप्त होता है" यह समझ कर पूर्वोक्त रत्न का सदुपयोग करो, तुमने दुःख सागर से पार होने के लिए उत्कृष्ट पुण्यरूपी मूल्य से इस शरीर रूपी नौका को खरीदा है इसलिए जब तक यह शरीर रूपी नौका टूट न जावे तब तक दुःख सागर के पार उतर जाओ, यदि इन सब बातों का मनन कर तुम कर्तव्य-परायण^३ बन जाओगे तो शीघ्र ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

१—सफल, २—बड़े, ३—कर्तव्य में तत्पर ।

परिशिष्टभाग
 श्री ब्रन्धकर्त्री जी महोदया का
 गुरुपारम्पर्य
 (सरोधक की श्रार म)

श्रीयुत विद्यावारिधी साधू वर्यं मुजान ।
 मुनिवर धन जी पूष थ, सम्प्रदाय महें जान ॥ १ ॥
 तिनक शिष्य विशनु जी, पूज्य वर्यं गुण खान ।
 परम तपस्वी ज्ञान रत, जासु होत गुण गान ॥ २ ॥
 तिन्ह क शिष्य मुनीवर, मन जी थे महाराज ।
 पूज्य पदहि सुशोभिषे, सब सुपारे काज ॥ ३ ॥
 इन्ह के ज्येष्ठ मुशिष्य थे पूज्यवर्य मुनिराज ।
 श्रीयुत नाधूराम जा, सब साधू सिरताज ॥ ४ ॥
 इन्ह क सताईस थे, शिष्यवर्य गुणरास ।
 ध्यानी ज्ञानी भक्ति रत, जासु जगत यशभास ॥ ५ ॥
 सफल शिष्य महें ज्येष्ठ थे लक्ष्मिचन्द्र महाराज ।
 परहित हेत कियो हुतो, जिहि तनुको ह साज ॥ ६ ॥

इन्हके शिष्य सुयोगरत^१, छत्रमल्ल महाराज ।
 जिन्ह के सद उपदेश तैं, गयोतिमिर^२ सब भाज ॥ ६ ॥
 इन्ह के शिष्यहु तीनि थे, ज्ञानी वर्य प्रधान ।
 पूज्यरतन शशि^३ पूज्यरत, राजाराम सुजान ॥ ७ ॥
 उत्तमचन्द्र तृतीय थे, पूज्यवर्य गुण खान ।
 गुणमहिमा इन की हुती, सर जग में परधान ॥ ८ ॥
 रत्नचन्द्र महाराज के, भज्जूलाल सुजान ।
 शिष्य हुते विद्या प्रवर, सर्व गुणन की खान ॥१०॥
 पूज्यवर्य भज्जूलालजी, सकल शास्त्र परवीन ।
 फारसि अरबी संस्कृत, परमुख^४ भाष^५ प्रवीन^६ ॥११॥
 गद्य पद्य मय ग्रन्थ रचि, कियो जगत उपकार ।
 ध्यानभक्ति रत है पुनः, कियो आत्म उद्धार ॥१२॥
 विद्यागार^७ बनारसी, पुरी जाय जिन्ह कीन्ह ।
 भूरि^८ बुधन तैं वाद हू, जीति पराभव दीन्ह ॥१३॥
 याही गुण अजहँ लिरयो, बुधजन माहीं नाम ।
 गिरा^९ कथन नहिं कर सकत, श्रीजी के गुणग्राम ॥१४॥

१—सुन्दर याग में त्परा । २—झंघरा । ३—रत्नचन्द्र जी ।
 ४—भादि । ५—भाषाओं में । ६—चतुर । ७—विद्या का घर ।
 ८—बहुत से । ९—बाणी ।

भग्ननाल महाराज क, पद्मालाल सुज्ञान ।
 शिपहुते तापस प्रवर, धीर महा मतिमान ॥१५॥
 दृष्टिस दरस ली छाद्य पिय, करी तपस्या भूर ।
 बेल बल पाग्ना, किया कर्म चपचूर ॥१६॥
 बेल पारन में हुये, सेत हुने मदि तोय^१ ।
 सर्व विरति मदि निर्मला कियो आत्मा धोय ॥१७॥
 प्रहर दोष श्रानापना, सेयि निदाघ^२ के माहि ।
 वस्त्र विहीनहु रहत थे, शीतल^३ के माहि ॥१८॥
 अग्रचन्द्र पारख हुत, धीकानेर के माहि ।
 तिनही क थे श्रातमज^४, गुणवरने नहि जाहि ॥१९॥
 साल सत दश मर्द लियी, दीडा^५ सुध मन भाय ।
 कठिन तपस्याकीन्ह जिहि, सकल कर्म फल जाय ॥२०॥
 या सुपाट शोमित अर्द्ध, पूज्यवर्य सद ज्ञान ।
 मोतीलाल सुनाम के, धीर भक्ति मतिमान ॥२१॥
 श्रीयुत राजाराम के, सिन्ध हुते धीमान ।
 रामलाल नामक सुधी, धीर धीर सज्ञान ॥२२॥

१—दाज का जत्र ।

२—घोषम शत्रु । ३—पुत्र ।

४—शिक्षा ।

रामलाल महाराज के, शिष्य अहैं मतिमान ।
 शुभ्रांश्वन्त फकीरजी^१ पुष्पचन्द्र^२ सजान ॥२३॥
 शनी ध्यानी भक्त वर, विद्यावन्त महान ।
 परहित रत हैं अहनिश^३, होत लोक यश गान ॥२४॥
 इनहीं के टोले भईं, धर्माजी महाराज ।
 सती शिरोमणि आरजाँ, किये भूरि^४ शुभकाज ॥२५॥
 दूजी कुंवर सदेवजी, हुतीं धर्मरत भूर^५ ।
 धारि तपस्या जिन कियो, सकल कर्म चकचूर ॥२६॥
 राय कुंवर तीजी हुतीं, सदगुण की जो खान ।
 तिन्ह के यश को लोक में, होत अहनिश^६ गान ॥२७॥
 इनही की शिष्या हुतीं, चम्पाजी महाराज ।
 सती शिरोमणि आरजाँ, आरजन महँ चिरताज ॥२८॥
 शतशः^७ तपकरि जिनकियो, सकल कर्म मल दूर ।
 सदगुण भानु^८ प्रकाशकरि चमकायो जगनूर ॥२९॥

१—फकीरचन्द्र जी । २—फूलचन्द्र जी । ३—रात दिन ।

४—बहुत से । ५—अत्यन्त ही । ६—रात दिन । ७—सैकड़ों ।

८—सूर्य ।

श्रीसुन्दरी विषय विनाय प्रथम महं काण्ड ।
 गानु भक्ति बंधन में, वन्दन महदु व म ३३ ।
 गंगा का निम्न छेद श्री सुन्दरी नाम ।
 गंगा निगमनि क्लान्ता, महदुन्दु का है धाम ३३३ ।
 विदुषा यथ सुमान है, परहित महं वचन ३ ।
 वरुनि तिनै नाथ में, भूमिकात्र गुन वचन ३३ ।
 वरुणाणा वरुणाय नै, विद्या मोह उदो ३ ।
 मातृमित्र वरुं दूर वरि, काम वरुणा उल ३३३ ।
 मान प्रगा पूर्य रत्न, वीरवर्णो मह प्रथ ३ ।
 वासुदेव प्राय वटाप क, वतनवा सन वरुण ३३३ ।
 वासुदेव यथ विनाकट, सुख मन लै वरु प्रगा ।
 मातृ मित्रि 'मायै वरुणा वीरै वरि' वी वरुण ३३३ ।

नाम शृताय परिच्छुद

० समाप्तार्थ प्रथ ३

१—१५५ । २—५५६ । ३—३६७ । ४—३६८ ।
 ५—३६९ । ६—३७० । ७—३७१ । ८—३७२ ।

ॐ धीः ॐ

शुद्धाशुद्ध-पत्र ।



| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---------|--------|----------------------|-----------------------|
| १ सप्त० | १० | प्रसंशा | प्रशंसा |
| १ प्र० | १ | धी | धीः |
| ३ प्र० | १४ | शुद्धि के | शुद्धि की |
| " | १० | अनुमित | अनुमति |
| ५ संग० | २ | परमेनिष्ठने | परमेष्ठिने |
| ६ सं० | ५ | मित | मित |
| ३ | १४ | अयप्यं | अयरायं |
| " | १० | तिरयपर | तिरयपर |
| " | " | इतरिय | इतरिय |
| २७ | १५ | निमिरि | निमिर |
| ३० | ६ | तरुफळें ^६ | तरु ^६ फळें |
| ३४ | १ | अह्यचय | अह्यचर्व |
| " | ३ | जहि | नहि |
| ३५ | १८ | छोइदो | ७-छोइदो |

भूरसुन्दरी विनेक विलास ग्रन्थ महँ कीन्ह ।
 यासु चरित सलेप तें, वर्णन लेबहु चीन्ह ॥३०॥
 इनही की शिष्या ग्रहं, भूर सुन्दरी नाम ।
 सती शिरोमणि श्रावर्जा, सदगुरु की हँ घाम^१ ॥३१॥
 विदुषी वर्यं सुजान हँ, परहित महँ परधीन^२ ।
 परहित जिन हँ लोक में, भूरिकाज शुभ कीन ॥३२॥
 सावाणी परभाव तें, नियो लोक उद्योत^३ ।
 मोह तिमिर कहँ दूर करि, ज्ञान पसारी जोत ॥३३॥
 तीन ग्रन्थ पूर्य रचे, चौथरच्यो यह ग्रन्थ ।
 पाखंड जाल हटाय के, बतलायो सत पन्थ^४ ॥३४॥
 पाठक वर्यं विलोकह^५, शुभ मन तें यह ग्रन्थ ।
 मोह तिमिर^६ नासै सकल, दीसै वृति^७ को पन्थ^८ ॥३५॥

इति तृतीय परिच्छेद

* समाप्तश्चाय ग्रन्थ ॐ

१—स्थान । २—बनुर । ३—प्रकाश । ४—स-मार्ग
 ५—दखिय । ६—मोहान्धकार । ७—कत-य । ८—मार्ग ।

ॐ श्री ॐ

शुद्धाशुद्ध-पद्य ।



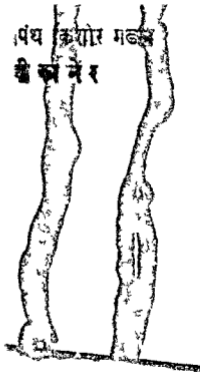
| पृष्ठ | पङ्क्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|--------|---------|---------------------|---------------------|
| १ सम० | १० | प्रसशा | प्रससा |
| १ म० | १ | धी | धी |
| ३ प्र० | १४ | शुद्धि के | शुद्धि की |
| " | १७ | अनुमित | अनुमति |
| २ मग० | २ | परमेनिष्ठने | परमेष्ठिने |
| ६ म० | २ | धिन | धित |
| ३ | १४ | अयप्य | अयराय |
| " | १७ | तिरथपर | तिरथपर |
| " | " | इतरिय | इतरिय |
| २७ | १२ | निमिरि | तिमिर |
| ३० | ६ | तरुफले ^६ | तरु ^६ फल |
| ३४ | १ | ब्रह्मचय | ब्रह्मचर्य |
| " | ६ | जाहिं | नाहिं |
| ३२ | १८ | छोददो | ७-छोददो |

| शुद्ध | परि | अष्टक | शुद्ध |
|-------|-----|--------------------|--------------------|
| ११ | ११ | अथ | शुद्ध |
| १८ | १ | अथ | अथ |
| ४४ | ३ | अविद्यया | अथ |
| " | १८ | कहना | अविद्यया |
| " | ११ | कहना | कहना |
| १२ | ११ | परिताप | कहना |
| ४८ | १२ | मगदगीता | पर-ताप |
| २१ | " | टादया | मगदगीता |
| " | " | ईस ^{१०} | टोडयो ^१ |
| " | " | करी | ईस |
| " | " | कान | करी |
| " | ११ | घग्ग ^{१२} | कान ^{१०} |
| " | ११ | घग्ग | घग्ग |
| " | १३ | राधापनी | घग्ग ^{१२} |
| " | १२ | बधे | राधापति |
| " | ११ | ७-दान | बधे |
| " | " | १-रावया | ७-दाना |
| " | " | १०-म-दोदरी । | १-दोडिया |
| २३ | ४ | वे | १०-रावय और म दोदरी |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|--------|----------------|-----------------------|
| २३ | २ | आश्रमों मे | आश्रमों के |
| " | ६ | सुधारविद्वत्ता | सुधार है जो कि विद्या |
| २४ | २ | चरकमल | चरणकमल |
| २६ | ७ | एसेसी | एसे ही |
| " | ८ | सतीर्थों | सतियों |
| २७ | ७ | भगवान | भगवान् |
| " | ६ | शाही | साही |
| " | १७ | महान | महान् |
| २८ | २ | रखी | रखी |
| " | ७ | मर्यान्तक | मरणात् |
| " | १० | वे | वह |
| " | ११ | राजदार | राजदारान् |
| " | ११ | इसको | इनको |
| " | १६ | वो | वे |
| " | " | सतीपणा | सती |
| " | १७ | पती | पति |
| " | १८ | स्वेच्छाचारी | स्वेच्छाचारिणी |
| " | " | वो | वह |
| २६ | २ | जो | जो |

| पृष्ठ | पत्रि | अक्षर | शब्द |
|-------|-------|----------------|----------------------|
| २६ | २ | वो | वे |
| " | " | धी | धियाँ |
| " | " | अधिकारी | अधिकारिणी |
| " | ३ | है | हैं |
| " | " | त्रिकण | त्रिकरण |
| " | ४ | वो | यह |
| " | ८ | विद्वान् | विदुषी |
| " | ११ | वर्णन करते हैं | वर्णन है तदनुसार |
| " | १३ | वे | यह |
| ६० | १० | निजकुल | निज ^१ कुल |
| ६१ | ६ | विद्यार्म्मास | विद्यार्म्मास |
| ६३ | १ | करा | करनी |
| ६४ | १० | सम्पत्तया | सम्पत्तया |
| ७१ | १२ | बलवान | बलवान् |
| ७६ | १० | भूख | भूख |
| ७७ | १४ | हमाती | हमती |

पंथ केशोर मठ
श्री केशर



जैन दर्शन में
तत्त्व-सीसांया